राष्ट्रपिता बापू

लेखक

रामप्रकाश कपूर

एम० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशक

नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स,

बाँसफाटक, वाराणसी

●

प्रकाशक

नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स

बाँसफाटक, वाराणसी

●

प्रथम बार ११००

मूल्य ९४ नये पैसे

१९६०

●

१२ से १६ वर्ष के बच्चों के लिये

(सर्वाधिकार लेखक के आधीन)

●

मुद्रक

जय भारत प्रेस

बाँसफाटक, वाराणसी

विषय-सूची

विषय			पृष्ठ-संख्या
१. राष्ट्रपिता बापू	...	...	१
२. गाँधीजी का बचपन	...	...	४
३. गाँधीजी के माता-पिता	...	...	६
४. सत्यवादी गाँधी	...	...	११
५. गाँधीजी की विलायत यात्रा	...	...	१८
६. बैरिस्टर गाँधी भारत में	...	...	२२
७. दक्षिण अफ्रिका में गाँधीजी	...	...	२५
८. गाँधीजी भारत लौटे	...	...	३१
९. गाँधीजी फिर अफ्रिका पहुँचे	...	...	३३
१०. फिर भारत आए !	...	...	४१
११. कर्मवीर गाँधी दक्षिण अफ्रिका में !	...	...	४५
१२. भारतीय किसान-मजदूर और गाँधीजी		...	५४
१३. गाँधीजी का असहयोग आन्दोलन	...	...	६०
१४. स्वदेशी और अछूतोद्धार	...	...	६७
१५. अंग्रेजों भारत छोड़ो	...	...	७२
१६. बापू का बलिदान	...	...	७४
१७. बापू का आदर्श-जीवन	...	...	७६

—राष्ट्रपिता बापू—

राष्ट्रपिता बापू

हमारा भारतवर्ष एक महान देश है। भारत की महानता न केवल क्षेत्रफल अथवा जनसंख्या के कारण है, वरन् उसकी महानता का एक प्रमुख आधार हमारे महान राष्ट्रनिर्माता हैं। अतीत में जहाँ राम, कृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर, अशोक ऐसे महान देशरत्नों ने विश्व में भारत का सम्मान बढ़ाया, वहीं वर्तमान युग में तिलक, गोखले, लाला लाजपत राय, महात्मा गाँधी, टैगोर एवं जवाहर लाल नेहरू ने भारत का गौरव बढ़ाया।

भारत के आधुनिक राष्ट्रनिर्माताओं में बापू का स्थान सर्वोपरि है। उन्होंने भारत की करोड़ों-भूखी नंगी अशिक्षित जनता का योग्य नेतृत्व किया। जनता से उसी की भाषा में बातें की। जनता के बीच रहे। जनता का दुःख दर्द समझा। जनता की सेवा करते-करते ही प्राण भी गँवा दिये।

बापू जनताको ही 'जनार्दन' समझते थे। इसलिये बापू वास्तव में भारत के पहले जननायक थे। भारत के औसत निर्धन व्यक्ति की तरह वे भी कपड़े पहनते। उसी तरह एक साधारण झोपड़ी में रहते। रूखा-सूखा सादा भोजन करते।

बापू ने भारत को आजादी दिलाई। मगर झोपड़ी नहीं छोड़ी। कोई पद नहीं ग्रहण किया। कपड़े नहीं बदले। भोजन नहीं बदला। जनता का साथ नहीं छोड़ा।

उनका पूरा जीवन हमारे लिए एक प्रकाश-स्तम्भ की भाँति है। उनके जीवन से आगे आनेवाली कई पीढ़ियाँ इसी प्रकार प्रकाश ग्रहण करती रहेंगी। उनकी ज्योति आज भी करोड़ों भारतीयों के हृदय में जल रही है। वह कभी नहीं बुझेगी।

बापू ने सत्य का महत्व बताया। सत्य के लिये लड़ना और मरना सिखाया। अहिंसा का पाठ पढ़ाया। अहिंसा और सत्याग्रह द्वारा भारत को इतनी बड़ी विजय दिलायी। जीवन में अहिंसा का मूल्य समझाया।

बापू ने भारत को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया। स्वदेशी के महा मंत्र द्वारा भारतीयों को आत्म-निर्भर बनाया। उनका कहना था कि जो अपनी सहायता खुद नहीं कर सकता, उसकी भगवान भी सहायता नहीं करता। इस प्रकार भारतवासियों को अपने पाँव पर खड़ा होना सिखाया।

बापू ने भाई-भाई से प्रेम करना सिखाया। उनका कहना था कि हम सभी भगवान के बनाये जीव हैं। न कोई छोटा है, न कोई बड़ा। सब समान हैं। किसी के द्वारा किसी का अपमान नहीं होना चाहिये। नर में ही नारायण का निवास है। यदि हम किसी को छोटा समझ कर उसका अपमान करते हैं, तो यह

भगवान का अपमान करना है। उन्होंने अछूतों को गले लगाया। उन्हें हरिजन कहकर सम्बोधित किया। उनके बीच रहे। उनमें नये जीवन का मंत्र फूँका।

बापू ने राम-रहीम की एकता द्वारा, धार्मिक सहिष्णुता का भारत को पाठ पढ़ाया। उनका कहना था कि सब धर्म मूलतः एक ही हैं। कोई भी धर्म अनैतिकता, हिंसा अथवा असत्य की शिक्षा नहीं देता। न कोई धर्म छोटा है, न कोई बड़ा। सब धर्म समान हैं। बापू की प्रार्थना सभा में सभी धर्मों के लोग सम्मिलित होते थे। बापू की प्रार्थना कितनी सुन्दर थी—

रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम।
ईश्वर अल्लाह तेरे नाम, सबको सम्मति दे भगवान॥
मन्दिर मस्जिद तेरे धाम, हिन्दू मुस्लिम सब सन्तान।
सबको जन्म दिये भगवान, भारत में सब रहें समान।

बापू कहा करते थे, 'मेरा-जीवन, मेरा संदेश है।' बापू का संदेश समझने के लिए, उनके जीवन का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। उनके जीवन-चरित्र को पढ़कर, हम अपने चरित्र को भी ऊँचा बना सकते हैं। बिना चरित्र-बल के कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता।

आओ बच्चो! आज अपने प्यारे राष्ट्रपिता बापू की जीवन-कहानी पढ़ें।

——

गांधीजी का बचपन

२ अक्तूबर १८६९ ई० को पोरबंदर अथवा सुदामापुरी में गाँधीजी का जन्म हुआ। पोरबंदर, गुजरात प्रदेश में काठियावाड़ के पास स्थित है।

इनके पिता का नाम करमचंद गाँधी था तथा माता का नाम पुतली बाई था। पिता को काबा गाँधी भी कहा जाता था। इनका नाम मोहनदास रखा गया। गुजरात में पुत्र के नाम के साथ पिता का नाम भी लिखे जाने का चलन है। इसलिये गाँधीजी अपना पूरा नाम मोहनदास करमचंद गाँधी लिखते थे।

काठियावाड़ में पिता को 'बापू' कहते हैं। जब गाँधीजी बड़े होकर भारत के राष्ट्रपिता बने, तो उन्हें करोड़ों भारतीयों ने आदर और प्रेम से 'बापू' कहकर सम्बोधित किया। इसलिये 'बापू' ही उनका सर्वप्रिय एवं बहुप्रचलित नाम पड़ गया।

गाँधीजी का बचपन पोरबंदर में ही बीता था। वहाँ की एक छोटी पाठशाला में इनका भी नाम लिखा दिया गया। वहाँ छोटे बच्चों के साथ मिलकर इन्होंने कुछ पहाड़े और मास्टर को गाली देना ही सीखा।

जब गाँधीजी केवल सात वर्ष के थे इनके पिताजी राजकोट चले गये। गाँधीजी भी राजकोट की देहाती पाठशाला में पढ़ने लगे। गाँधीजी एक साधारण झेंपू विद्यार्थी थे। बारह साल की अवस्था में यह दूसरे स्कूल में भर्ती किये गये।

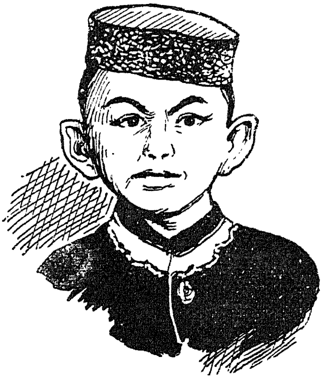

गाँधीजी सदा अपने मास्टरों की इज्जत करते। इनका कहना था कि छोटे बच्चों को बड़े-बूढ़ों की आज्ञा माननी ही चाहिये। बड़े-बूढ़ों में दोष नहीं ढूँढ़ना चाहिये।

गाँधीजी उन दिनों हाई-स्कूल में पढ़ते थे। इनके स्कूल का निरीक्षण करने एक इंसपेक्टर आये। उन्होंने विद्यार्थियों से पाँच शब्द लिखाये। उनमें एक शब्द था 'केटल' (Kettle)। उसे इन्होंने गलत लिखा। मास्टर-साहब ने इशारा करके आगे के लड़के की स्लेट से देखकर सही लिखने को कहा। लेकिन गाँधीजी ने दूसरे की नक़ल नहीं की। ऐसे थे दृढ़-साहसी बालक गांधी।

—❀—

गांधीजी के माता-पिता

गाँधीजी के पिता का नाम करमचन्द गाँधी था। वे पहले पोरबन्दर में दीवान थे। इसके बाद राजकोट तथा बीकानेर में दीवान पद पर रहे। मृत्यु से पूर्व वे राजकोट दरबार से पेंशन पाते थे।

उनके कुल चार विवाह हुए थे। पुतलीबाई चौथी पत्नी थीं। उनसे एक कन्या और तीन पुत्र हुए। मोहनदास गाँधी सबसे छोटे पुत्र थे।

करमचंद गाँधी जितने सत्यप्रिय और उदार थे, उतने ही क्रोधी भी। उन्होंने कभी रिश्वत नहीं ली। उनमें राज्य-भक्ति कूट-कूटकर भरी थी। राजकोट के ठाकुर साहब का एक अंग्रेज अधिकारी ने अपमान कर दिया। इन्होंने उसका सामना किया। साहब ने बिगड़कर गाँधी से माफी माँगने को कहा। करमचंद गाँधी ने इन्कार कर दिया। इसके दंड-स्वरूप कुछ घंटे इन्हें

हवालात में भी रहना पड़ा। बालक मोहनदास पर पिता की इस दृढ़ता का प्रभाव पड़ा। बड़े होकर मोहनदास गाँधी ने जिस दृढ़ता से अन्याय का सामना किया उसके पीछे पिता के ही उज्ज्वल संस्कार थे।

गाँधीजी की माता पुतली बाई सती साध्वी पतिव्रता भारतीय नारी थी। नियमित पूजा-पाठ, व्रत-उपवास किया करती। बीमार पड़ने पर भी व्रत न छोड़ती। निराहार उपवास करने का भी उन्हें अभ्यास था।

बालक गाँधी के दिल पर बचपन से माता की छाप पड़ी। वे भी ईश्वर-भक्त बने। सदाचार की जो शिक्षा बचपन में गाँधीजी को माता से प्राप्त हुई, उसने एकदिन सचमुच उन्हें 'महात्मा' के रूप में सारे भारत में प्रतिष्ठित किया।

उनकी माता बड़ी व्यवहार-कुशल भी थीं। गाँधीजी की जिस व्यवहारिक वणिक-बुद्धि का अंग्रेजों ने लोहा माना, उसका बीज-वपन इनकी माता ने ही किया था। बड़े होने पर गाँधीजी ने अनेक बार लम्बे-लम्बे उपवास किये। संभवतः यह आत्मबल भी उन्हें अपनी माता से विरासत में मिला हो।

बालक गाँधी के शिशु हृदय पर माता-पिता की जबर्दस्त छाप पड़ी। अगर गाँधीजी के माता-पिता ईश्वर-भक्त, सच्चरित्र और साधु नहीं होते, तो शायद वे कभी 'महात्मा' न बन पाते। हर बालक पर माता-पिता के रहन-सहन एवं आचरण की

स्वभावतः छाप पड़ती है। बालक गाँधी के हृदय पर जो छाप पड़ी वह शुभ थी।

बालक गाँधी ने बचपन में 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नामक नाटक पढ़ा था। उन्हीं दिनों शीशे में तस्वीर दिखाने वाले से इस नाटक के चित्र भी देखे। इसका उनपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। श्रवण-कुमार को बाँस की बेहँगी में माता-पिता को बैठाकर तीर्थ कराते देखकर, उनमें भी पितृ-भक्ति उदय हुई।

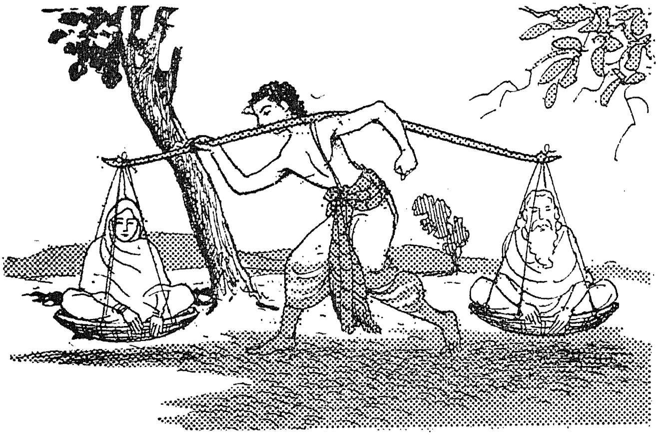

गाँधीजी भी श्रवणकुमार बनना चाहते थे। इसलिये स्कूल में छुट्टी होते ही वे सीधे घर चले आते। खेलकूद का समय भी माता-पिता की सेवा में लगाते। उनके माता-पिता उनसे बहुत खुश रहते।

१३ वर्ष की छोटी उम्र में ही गाँधीजी का कस्तूरबा के साथ विवाह हो गया। विवाह होने के बाद भी गाँधीजी की पितृ-भक्ति में कुछ अन्तर न पड़ा। बीमार पिता की टाँगे वह बहुत रात तक बैठे दबाया करते। उन दिनों छोटी अवस्था में ही बालक-बालि-

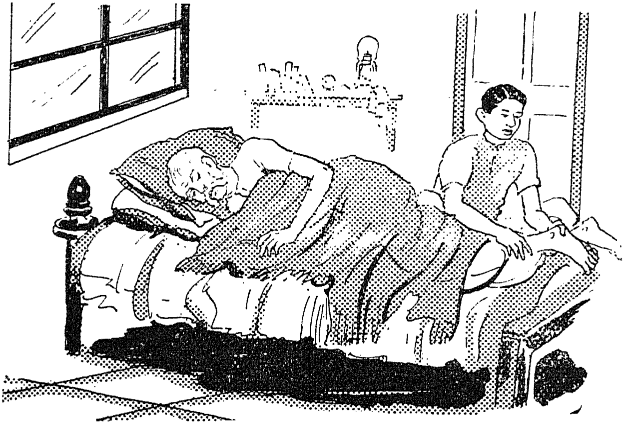

काओं का विवाह करा दिया जाता था। गाँधीजी के माता-पिता ने भी परम्परानुसार गाँधीजी का विवाह करा दिया। उस समय गाँधी जी यह सोचकर खुश होते कि अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने को मिलेंगे, बाजे बजते सुनेंगे और तरह-तरह का भोजन व मिठाई खाने को मिलेगी। इससे अधिक वे विवाह के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते थे।

बाल-विवाह को गाँधीजी बहुत बुरा समझते थे और इस कुप्रथा का बराबर उन्होंने इसीलिये विरोध भी किया, क्योंकि वे भुक्तभोगी थे।

अपनी सेवा के बल पर बालक गाँधी ने माता-पिता का हृदय जीत लिया। उनके आशीर्वाद के फलस्वरूप ही शायद गाँधी जी इतने महान बन सके।

सत्यवादी गांधी

बचपन में गाँधीजी ने सत्यहरिश्चन्द्र नाटक देखा था। इस नाटक को वे बार-बार देखना चाहते। यद्यपि बार-बार इस नाटक को देखने का अवसर इन्हें प्राप्त न हुआ, फिर भी अपने मन में सैकड़ों बार इन्होंने इस नाटक को दोहराया।

इन्हें हरिश्चन्द्र के ही सपने आते। इनकी भी इच्छा हरिश्चन्द्र की भाँति सत्यवादी बनने की हुई। विपत्तियों के बीच भी सत्य पर अडिग रहना, इन्हें सत्य का सच्चा स्वरूप लगा। हरिश्चन्द्र ने इन्हें बहुत प्रभावित किया। इन्होंने भी सदा सच बोलने की प्रतिज्ञा की।

गाँधीजी अपने अध्यापकों से सदा सच बोलते। शनिवार को सुबह स्कूल में पढ़ाई होती तथा शाम को चार बजे कसरत के लिये लड़कों को जाना पड़ता। गाँधी जी के पास घड़ी न थी।

आकाश में बादल छाये हुए थे। समय का ठीक पता न चला। फिर भी अनुमान के आधार पर गाँधी जी कसरत के लिये वहाँ पहुँचे। लेकिन तब तक कसरत कर सब लड़के जा चुके थे। दूसरे

दिन अध्यापक ने अनुपस्थित रहने का कारण पूछा। गांधीजी ने सब कुछ सच-सच कह सुनाया। उन्हें विश्वास न हुआ और गाँधी जी पर एक या दो आना जुर्माना हो गया। गाँधीजी को इस बात का अत्यन्त दुःख हुआ कि वे झूठे समझे गये। इनके लिये यह सिद्ध करना भी कठिन था कि वे झूठ नहीं सच बोले हैं। इनके हृदय में इस बात का बहुत दुःख हुआ और वे रो पड़े। इन्होंने यह अनुभव किया कि सच बोलने वाले को सदा चैतन्य रहना चाहिये। इसके बाद कभी विद्यार्थी जीवन में गाँधी जी से ऐसा अपराध न हुआ। अन्त में संभवतः गाँधीजी ने यह जुर्माना माफ भी करा लिया।

बचपन में गाँधीजी से भी भूलें या अपराध हुए, सत्यवादी गाँधी ने उनका पूर्ण विवरण अपनी 'आत्मकथा' में लिख दिया है। इससे पता चलता है कि गाँधीजी कितने कठोर सत्यवादी

थे। उन्होंने अपराध तो क्या, अपने द्वारा किये हुए पाप पर भी पर्दा डालने का कुछ प्रयास नहीं किया।

गाँधीजी का एक बुरे मित्र से साथ हो गया। वह पहले इनके बड़े भाई का मित्र था। उसकी बुरी आदतों से सब परिचित थे। उनकी माता, पत्नी तथा भाई तीनों ने गाँधीजी को सचेत किया कि वे उसकी बुरी सोहबत से दूर रहें। मगर गाँधीजी में एक सुधारक का उत्साह था। उनका विश्वास था कि वे उसका सुधार कर लेंगे।

गांधीजी तो उसे प्रभावित न कर सके, लेकिन उसने गाँधीजी को जरूर प्रभावित किया। उसने गाँधीजी को समझाया कि बहुत से हिन्दू अध्यापक छिपकर माँस खाते तथा मदिरा पीते हैं। अंग्रेज मांस खाते हैं इसीलिये हमपर शासन कर रहे हैं। हमलोग माँस नहीं खाते, इसीलिए कमजोर हो गये हैं। तुम भी अगर माँस खाओगे तो मेरी तरह हटे कट्टे हो जाओगे।

गांधीजी के मंझले भाई भी छिपकर माँस खाते थे। उन्होंने भी गाँधीजी को प्रभावित किया। गाँधीजी बहुत डरपोक थे। इन्होंने सोचा कि माँस खाने से शायद मेरा डर दूर हो जाय। धीरे-धीरे वे भी उन लोगों से प्रभावित होकर माँस खाने को राजी हो गये। मगर वे माता-पिता के परम भक्त थे। उनसे झूठ कैसे बोलते ? वे अजीब धर्म-संकट में पड़े।

गाँधीजी मांस शौक या स्वाद के लिये नहीं खाना चाहते थे। वे निडर साहसी, और बलवान बनना चाहते थे। इसलिये छिपकर किसी तरह वे माँस खाने को राजी हो गये। जब-जब बाहर ऐसा भोजन करके आते, घर खाना न खाया जाता। माँ से बहाना बना देते कि आज भूख नहीं है, खाना नहीं पचा। मगर जब वह झूठ बोलते, उन्हें बहुत दुःख होता। उन्होंने तो सत्य बोलने की प्रतिज्ञा की थी।

अन्त में सत्य ने असत्य पर विजय पाई। गाँधीजी ने अनुभव किया कि भले ही माँस खाना जरूरी हो, लेकिन माता-पिता को धोखा देना और झूठ बोलना पाप है इसलिये उन्होंने निश्चय किया कि माता-पिता के जीते जी माँस न खाना चाहिए। सत्यवादी गाँधी ने अपने मित्र से यह बात साफ-साफ कह दी। वे सब कुछ सह सकते थे, लेकिन माता-पिता से झूठ बोलकर, उन्हें धोखा देना नहीं चाहते थे। ऐसे थे सत्यवादी गाँधी !

अपने एक रिश्तेदार के साथ गाँधीजी को सिगरेट पीने की भी आदत लग गई। उनके चाचा भी सिगरेट पीते थे। उनके सिगरेट पीकर फेंके हुए टुकड़े, उठा उठाकर ये पी लिया करते। परन्तु ये टुकड़े हमेशा उपलब्ध न होतें तथा इनसे धुआँ भी बहुत नहीं निकलता। मुँह से धुआँ छोड़ने में ही इन्हें आनंद आता था।

अन्त में नौकर के पैसों में से एक-एक, दो-दो पैसे चुराकर बीड़ी खरीदने लगे। उसे छिपाकर रखने की समस्या टेढ़ी थी।

बड़े बूढ़ों के सामने बीड़ी-सिगरेट पी भी नहीं सकते थे। पराधीनता बुरी लगी। आत्म-हत्या का कुविचार उठा जो फिर एक कड़ुवे अनुभव के बाद हमेशा के लिये समाप्त हो गया।

इस कड़ुवे अनुभव से एक बड़ा लाभ हुआ। बीड़ी पीने की आदत हमेशा के लिये छूट गई। फिर आगे चलकर बड़े होने पर भी, जीवन में कभी बीड़ी-सिगरेट पीने की इच्छा तक नहीं हुई। गाँधीजी ने सदा इस आदत को जंगली, हानिकारक और गन्दी माना है। उन्हें इस बात से बहुत आश्चर्य होता कि आखिर दुनिया को बीड़ी-सिगरेट पीने का शौक क्यों होता है? रेल के जिस डिब्बे में लोग बहुत बीड़ियाँ पीते थे, वहाँ बैठना बापू के लिये मुश्किल हो जाता था। धुएँ से उनका दम ही घुटने लगता था।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में गाँधीजी ने दूसरी चोरी की। इनके बड़े भाई ने पच्चीस रुपये कर्ज ले रखे थे। उसे चुकाना था। बड़े भाई के हाथ में सोने का एक ठोस कड़ा था। उसमें से एक तोला सोना काटना कठिन न था। कड़ा काटकर कर्जा चुकाया गया। इस घटना से गाँधीजी बहुत दुःखी हुए। उन्होंने भविष्य में कभी चोरी न करने की प्रतिज्ञा की।

मगर इससे उन्हें सन्तोष न हुआ। पिताजी से सत्य कहकर अपराध स्वीकार कर लेने की इच्छा हुई। लेकिन उनके सामने

मुँह कैसे खुलता ? साहस न हुआ। लेकिन बिना सत्य बोले
शान्ति कहाँ ?

बहुत उधेड़बुन के बाद निश्चय किया कि चिट्ठी लिखकर
अपना दोष स्वीकार कर लूँ। चिट्ठी लिखकर अपना दोष स्वीकार
किया और अपराध के लिये उचित दंड माँगा। यह भी प्रतिज्ञा
लिखी कि भविष्य में कभी फिर ऐसा अपराध न करूँगा।

चिट्ठी देते समय हाथ काँप रहा था। उस समय गाँधीजी के
पिता बीमार थे और लकड़ी के तख्तों पर उनका बिछौना बिछा
हुआ था। चिट्ठी देकर वहीं पास में गाँधीजी हाथ जोड़कर
बैठ गये।

चिट्ठी पढ़कर उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। चिट्ठी भी आँसुओं से भींग गई। थोड़ी देर के लिये उन्होंने आँखें मूँद लीं। फिर चिट्ठी फाड़ डाली। चिट्ठी पढ़ने के लिए वह उठकर बैठ गये थे। फिर लेट गये।

गाँधीजी भी रो पड़े। ऐसी शांतिमय क्षमा का उनपर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने अनुभव किया कि यदि मनुष्य अपराध शुद्ध हृदय से स्वीकार कर उसे पुनः न करने की प्रतिज्ञा करे, तो इससे सच्चा प्रायश्चित हो जाता है। हृदय भी निर्मल स्वच्छ हो जाता है, तथा बहुत शान्ति भी प्राप्त होती है।

प्यारे बच्चो! गाँधीजी भी कभी तुम्हारी तरह छोटे बच्चे थे। उनके भी अच्छे-बुरे साथी थे। उन्होंने कई बार अपराध किये, तथा भूलें कीं। मगर अन्त में सत्य ने उनकी रक्षा की। सत्य ने उन्हें पाप से बचाया। गाँधीजी ने 'सत्य' पर दृढ़ रहकर ही जीवन में इतनी उन्नति की। सत्य ने ही उन्हें 'महात्मा' बनाया।

सच बोलने का परिणाम हमेशा अन्त में मीठा रहता है। तुम्हें भी 'सत्यवादी गाँधीजी' के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये। बुरी आदतें या बुरी संगत छोड़कर, हमेशा अच्छे पवित्र विचार रखने चाहिये। यदि जाने-अनजाने कोई भूल या अपराध हो जाय तो सच्चे मन से उसका प्रायश्चित करना चाहिये तभी एक दिन तुम भी बापू की तरह महान् और यशस्वी बन सकोगे।

गांधीजी की विलायत-यात्रा

गाँधीजी ने सन् १८८७ ई० में मैट्रिक पास किया। उस समय तक इनके पिताजी का स्वर्गवास हो चुका था। गांधीजी ने कालेज में नाम लिखाया। वहाँ पढ़ाई में इनका मन न लगा।

गाँधीजी के पिता के एक अभिन्न मित्र ने, इनकी माता को सलाह दी कि बैरिस्टरी पढ़ने के लिये गाँधी को विलायत भेज दो। गाँधीजी विलायत डाक्टरी पढ़ने जाना चाहते थे। परन्तु वैष्णव होने के नाते डाक्टरी पढ़ाने का किसी ने समर्थन नहीं किया। अन्त में बैरिस्टरी पढ़ने के लिए भेजने का निश्चय हुआ। विलायत जाने में कई रुकावटें थीं। गाँधीजी को किसी प्रकार सबकी सहमति प्राप्त हो गई। परन्तु दूर परदेश में पुत्र को अकेले भेजते माता को हिचक हुई। उन्होंने सुन रखा था कि विलायत में जाकर नवयुवकों का चाल-चलन बिगड़ जाता है।

गाँधीजी ने माता को विश्वास दिलाया कि मैं कभी तुम्हारा विश्वास न तोड़ूँगा। अन्त में माता ने इनसे तीन प्रतिज्ञाएँ करायीं। इन्होंने प्रतिज्ञा की कि विलायत में माँस, मदिरा और स्त्री-प्रसंग से दूर रहूँगा। तब माताजी ने आज्ञा दी।

अपने बड़े भाई के साथ गाँधीजी बम्बई गये। वहाँ से समुद्र द्वारा विलायत जाने का विचार था। मगर मित्रों ने जून-जुलाई

में विलायत जाने की राय न दी। उनका कहना था कि उन दिनों हिन्द महासागर में तूफान उठता है। जहाज डूब जाने का भी भय रहता है। इसलिए दीपावली के बाद नवम्बर में भेजने को कहा। गाँधीजी को लाचार होकर बम्बई में ही रुकना पड़ा। उनके भाई राजकोट अपनी नौकरी पर वापस लौट गये।

गाँधीजी के विलायत जाने का उनकी जातिवालों ने विरोध किया। पंचायत हुई। गाँधीजी बुलाये गये। उन्हें विलायत जाने से रोका गया क्योंकि समुद्र-यात्रा धर्म में मना है। गाँधीजी ने निडर होकर कह दिया कि मैं वहाँ केवल विद्याध्ययन ही करने जा रहा हूँ। यह भी कहा कि जिन बातों का आपको भय है उनसे दूर रहने की प्रतिज्ञा मैंने माताजी के सामने कर ली है और मैं उनसे दूर रहूँगा।

फिर भी पंचों को सन्तोष न हुआ। उन्होंने गाँधीजी का जाति-बहिष्कार कर दिया। यह घोषणा कर दी गई कि जो भी व्यक्ति इनकी सहायता करेगा वह जाति के समक्ष अपराधी माना जायेगा और उससे सवा रुपया जुर्माना लिया जायेगा।

अठारह वर्ष के नवयुवक गाँधी ४ सितम्बर १८८८ ई० को बम्बई से विलायत के लिये समुद्री जहाज से रवाना हो गये।

जिस जहाज पर गाँधीजी यात्रा कर रहे थे उसमें अधिकतर अंग्रेज यात्री थे। उनकी बात-चीत गाँधीजी समझ न पाते। खाने की टेबुल पर भी वे न जाते, क्योंकि उन्हें यह पूछते भी हिचक

होती कि खाने के सामान में कौन सी चीज बिना माँस की है।

दिन भर गाँधीजी 'केबिन' में घुसे बैठे रहते। जब जहाज के डेक पर कुछ भीड़ कम होती, तब वहाँ जाते।

गाँधीजी विलायत पहुँचे। भोजन की समस्या बड़ी विकट थी। बिना माँस का भोजन बड़ी कठिनाई से मिलता और जो कुछ मिलता वह उन्हें पसन्द न आता। मित्रों ने बहुत समझाया कि विलायत जैसे ठंडे देश में बिना माँस के रहना बहुत कठिन है, लेकिन कभी भी गाँधीजी ने उनकी बात न मानी। उन्होंने अन्त तक माँ को दिये हुए बचन तथा प्रतिज्ञा का पालन किया। भूखे रह जाना भी उन्हें स्वीकार था, लेकिन माँस खाना किसी भी मूल्य पर उन्हें अङ्गीकार न था।

गाँधीजी पर पहले विलायत की तड़क-भड़क का प्रभाव पड़ा। लेकिन कुछ समय बाद ही उनकी आँखें खुलीं। उन्होंने विलायत में रहकर भी सादा जीवन बिताने का निश्चय किया। एक सस्ते किराये की छोटी सी कोठरी ले ली। एक वक्त का भोजन खुद अपने हाथ से बनाते। अधिकतर पैदल ही आते-जाते जिससे सवारी का भाड़ा न खरचना पड़े।

उन्होंने वहाँ रहकर ही 'गीता' का अध्ययन किया। 'गीता' के अध्ययन से गाँधीजी को नया-प्रकाश प्राप्त हुआ। फिर "बुद्ध-चरित" उन्होंने पढ़ा। इसका भी उनके ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा। एक इसाई-मित्र के कहने से गाँधीजी ने बाइबिल भी पढ़ी। उसे भी गांधीजी ने पसन्द किया।

इसका फल यह हुआ कि गांधीजी की ईश्वर-भक्ति तथा धर्म में श्रद्धा और विश्वास बढ़ता गया।

गांधीजी ने विलायत में लैटिन और फ्रेंच का भी अध्ययन किया। यद्यपि परीक्षा में पास होने के लिये बाजार से सस्ते नोट्स खरीदकर वे और विद्यार्थियों की तरह पढ़ सकते थे, लेकिन उन्होंने इसे उचित न समझा। 'रोमन ला' को लैटिन में पूरा पढ़ा। तब परीक्षाएँ पास कीं। १० जून १८९१ ई० को गांधीजी बैरिस्टर बने।

गांधीजी लगभग तीन वर्ष विलायत में रहे। लेकिन अत्यन्त दृढ़ता से उन्होंने प्रतिज्ञा का पालन किया। गांधीजी की महानता इस बात में है कि उन्होंने सदा अपने वचन का पालन किया।

—०—

बैरिस्टर गाँधी भारत में

१८६१ ई० में बैरिस्टर गाँधी भारत लौटे। इनके भारत पहुँचने से पूर्व ही इनकी माता का देहान्त हो चुका था। गांधीजी को यह समाचार विलायत में न मालूम हो सका। इनके बड़े भाई ने उन्हें इसलिये वहाँ सूचित नहीं किया, जिससे उनपर कोई आघात न पहुँचे। गाँधीजी को इस बात का बहुत दुःख हुआ कि वे अपनी माता के दर्शन न कर सके।

गांधीजी ने इंगलैंड में जो कानून पढ़े थे, उनसे भारत के कानूनों का कोई सम्बन्ध नहीं था। भारत में वकालत करना गाँधीजी को मुश्किल जान पड़ा। वकालत में बिना झूठ के काम ही नहीं चलता है। गाँधीजी को झूठ से नफ-रत थी। मित्रों ने बंबई उच्चन्यायालय में जाकर वकालत करने की राय दी। वहाँ जाकर भारत के कानून का भी अध्ययन किया जा सकता था। गांधीजी राजकोट से बंबई पहुँचे।

बंबई में घर लिया। कानून का अध्ययन शुरू किया। बैरिस्टरी की टीम-टाम में भी बहुत खर्च हो जाता। आमदनी थी नहीं। खर्च हर महीने बढ़ता जाता था। भाग्य से एक

मुक़दमा मिला। तीस रुपये फीस मिली। गांधीजी ने दलाल को दलाली देने से इन्कार कर दिया।

अदालत में जिरह करने खड़े हुए। गांधीजी के पैर काँपने लगे, सिर घूमने लगा। उन्हें लगा कि पूरी अदालत घूम रही है। सवाल पूछने की हिम्मत न पड़ती। फीस वापस कर गांधीजी घर लौट आये। दूसरे वकील को उसका मुकद्मा दे दिया। इस घटना से गांधीजी मन में बहुत लज्जित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि जबतक पूरी हिम्मत न आ जाय कोई मुकद्मा न लूँगा।

गांधीजी रोज पैदल ही अदालत तक टहलते जाते। कुछ दिन तक लोगों की मुफ्त अर्जियाँ लिखते। खर्च की समस्या टेढ़ी थी। एक स्कूल में अंग्रेजी अध्यापक की जगह खाली थी। वहाँ कोशिश की। बी० ए० न होने के कारण निराशा ही हाथ लगी। लाचार होकर पाँच छः महीने बाद ही बम्बई से डेरा-डंडा उठाकर राजकोट वापस लौटना पड़ा।

राजकोट में गाँधीजी को अर्जी लिखने का काम मिलने लगा। तीन सौ रुपया महीना कमा लेते। एकबार गाँधीजी को अपने बड़े भाई के काम से एक अंग्रेज अधिकारी के पास जाना पड़ा। गाँधीजी जाना नहीं चाहते थे, मगर बड़े भाई के आग्रह को टाल न सके। उस अंग्रेज अधिकारी से गाँधीजी का विलायत में परिचय हो चुका था। गाँधीजी उससे मिले। उसने बहुत बुरा व्यव-

इार किया। गांधीजी की पूरी बात सुने बिना उन्हें निकल जाने को कहा। जब गांधीजी ने कुछ और कहना चाहा तो चपरासी से धक्का दिलवाकर उन्हें बाहर निकलवा दिया। इस घटना से गांधी जी को बहुत दुःख हुआ। इस अपमान से गांधीजी को यह शिक्षा मिली कि कभी किसी की सिफारिश करने कहीं जाना नहीं चाहिये। जीवन में फिर कभी गांधीजी ने किसी व्यक्ति की सिफारिश नहीं की।

दक्षिण अफ्रिका से गांधीजी के भाई के पास बुलावा आया। वहाँ एक बड़ा मुकदमा चल रहा था। वकीलों को मामला ठीक से समझाने के लिये बैरिस्टर गाँधी बुलाये गये थे। आने-जाने का फर्स्ट क्लास का किराया और भोजन मुफ्त तथा १०५ पौण्ड वेतन देना तय हुआ। गाँधीजी जाने को सहर्ष तैयार हो गये। उन्होंने सोचा १०५ पौण्ड भाई साहब को वहाँ से भेज दिया करेंगे तो भाई साहब को घर-खर्च में भी मदद हो जायेगी।

अप्रैल सन् १८९३ में बड़े उत्साह के साथ गाँधीजी दक्षिण अफ्रिका के लिये भारत से रवाना हुआ।

दक्षिण अफ्रिका में गांधीजी

गाँधीजी दक्षिण अफ्रिका पहुँचे। डरबन बन्दरगाह पर सेठ अब्दुला गाँधीजी को लेने आये थे। उनके घर पर गाँधी जी गये। रहने को एक कमरा मिला।

उनका मुकदमा ट्रांसवाल में चल रहा था। वे स्वयं पढ़े-लिखे भी कम थे। बोलचाल की अंग्रेजी जानते थे। वह कट्टर इस्लाम भक्त थे। किसी पर जल्दी विश्वास नहीं करते थे। गाँधीजी पर भी उन्हें पहले विश्वास न हुआ।

दो-तीन-दिन बाद वह गाँधीजी को डरबन अदालत दिखाने ले गये। वहाँ अपने मित्रों से गाँधीजी का परिचय कराया। उनके वकील के पास ही गाँधीजी अदालत में बैठ गये। मजिस्ट्रेट ने कुछ देर गाँधीजी की ओर देखा फिर कहा-'अपनी पगड़ी उतार लो!'

गाँधीजी को यह अपना अपमान लगा। उन्होंने पगड़ी नहीं उतारी, लेकिन चुपचाप उठकर बाहर चले गये। इससे उनके दिल को बहुत चोट लगी। उन्होंने इसके विरुद्ध समाचार पत्रों में लिखा। तीन-चार दिन में ही पूरे दक्षिण अफ्रिका में गाँधीजी का नाम फैल गया।

कुछ दिन बाद ही मुकदमे के सिलसिले में गाँधीजी को

प्रिटोरिया जाना पड़ा। पहले दर्जे का टिकट लेकर गाँधीजी रेल में सवार हो गये। रास्ते में एक अंग्रेज यात्री आया। वह पहले दर्जे में एक काले आदमी को बैठा देखकर चौंका। वह रेलवे कर्मचारियों को बुला लाया। उन लोगों ने गाँधीजी को डिब्बा बदलने को कहा। गाँधीजी के पास पहले दर्जे का टिकट था। उन्होंने उतरने से इन्कार कर दिया। सिपाही आया। उसने हाथ पकड़कर, धक्का मारकर, गाँधीजी को नीचे गिरा दिया। सामान भी नीचे उतार दिया। गाँधीजी ने दूसरे डब्बे में जाने से इन्कार कर दिया। गाड़ी चल पड़ी। गाँधीजी सामान छोड़कर, हाथ का झोला लेकर वेटिंग रूम (प्रतीक्षालय) में जाकर बैठ गये। जाड़े का मौसम था। ओवरकोट सामान में पड़ा था। अपमान के डर से गाँधीजी ने रेलवालों से सामान नहीं माँगा। जाड़े में रात भर ठिठुरते बैठे रहे।

दूसरे दिन इसकी शिकायत उच्च-अधिकारियों से गाँधी जी ने लम्बे तार द्वारा की। फिर दूसरी ट्रेन से गाँधीजी चार्ल्स टाउन गये। मन में इस अन्याय का विरोध करने का संकल्प किया। अपने अधिकारों के लिये तथा रंग-भेद के विरुद्ध लड़ने का निश्चय किया।

चार्ल्सटाउन से जोहान्सबर्ग तक घोड़ागाड़ी पर जाना था। वहाँ जाने के लिए ट्रेन न थी। घोड़ागाड़ी वाले ने भी गाँधी जी को अनजान समझकर इनसे कुली जैसा व्यवहार किया।

इनके पास टिकट था, फिर भी अन्दर न बैठाकर, कोचवान के पास बैठने को कहा। गाँधीजी ने इस अपमान को भी सह लिया और जहर का कड़वा घूँट पीकर वहाँ बैठ गये।

कुछ घंटे बाद करीब तीन बजे, घोड़ागाड़ी के नौकर गोरे को सिगरेट पीने की इच्छा हुई। वह बाहर आया। एक मैला सा बोरा हाँकनेवाले के पास से लेकर, पैर रखने वाले तख्ते पर बिछा दिया। उसने गाँधीजी को वहाँ बैठने को कहा। गाँधीजी ने उससे कहा कि तुमने मुझे बाहर बैठाकर ही मेरा अपमान कर दिया जिसे मैंने सह लिया। वास्तव में मेरा स्थान घोड़ा-गाड़ी के अन्दर था। अब तुम अपने पाँव के पास मुझे बैठाना चाहते हो, लेकिन मैं वहाँ नहीं बैठूँगा। मैं अन्दर बैठ जाता हूँ, तुम बाहर खुले में सिगरेट पी लो।

गाँधीजी पूरी तरह अपनी बात कह भी नहीं पाये थे कि उनपर थप्पड़ों की वर्षा होने लगी। वह उन्हें गालियाँ देता जाता और मारता जाता। सब यात्री यह दृश्य देख रहे थे। वह मजबूत था और गाँधीजी कमजोर। अन्त में कुछ यात्रियों को दया आई और किसी तरह गांधीजी की जान बची।

दक्षिण अफ्रिका में गांधीजी को अनेक अवसरों पर रंग भेद के कारण अपमानित होना पड़ा। उन्हें होटल में हिन्दुस्तानी होने के कारण रहने को स्थान नहीं मिला। ट्रेन में पहले दर्जे का टिकट देने से इन्कार कर दिया गया। पग-पग

पर उन्हें इसी प्रकार अपमान के कड़ुवे घूँट पीने पड़े। वहां भारतवासियों के साथ इस प्रकार का दुर्व्यवहार करने के गोरे अभ्यस्त हो गये थे। गांधीजी का मन इस अन्याय के विरुद्ध विद्रोह कर उठा। प्रिटोरिया में गांधीजी ने भारतीयों की एक सभा की। उन सबको आपसी भेद भुलाकर, एक बनकर रहने का उपदेश दिया। अन्याय का विरोध करने को कहा।

प्रिटोरिया में गांधीजी लगभग एक वर्ष रहे। वहाँ सार्वजनिक काम करने का उन्हें अनुभव प्राप्त हुआ। धार्मिक ज्ञान भी बढ़ा। ईसाई मित्रों के सम्पर्क में रहकर उनके धर्म की बहुत सी बातें सीखीं। वकालत का भी सच्चा ज्ञान यहाँ पर प्राप्त हुआ। उन्होंने बहुत परिश्रम कर मुकदमे की तैयारी की। अन्त में देखा कि इस मुकदमेबाजी में दोनों पक्ष बर्बाद हो जायेंगे और उनके हाथ कुछ न लगेगा। गांधीजी ने बहुत प्रयत्न कर दोनों पक्षों में सुलह करा दी। फिर पंच द्वारा उचित फैसला भी करा दिया। इससे उनकी आत्मा को बहुत सन्तोष प्राप्त हुआ।

गाँधीजी ने अनुभव किया कि वकील लोग दो व्यक्तियों को लड़ाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। उन्हें इससे घृणा थी। इसलिये वह सदा दोनों पक्ष को आपस में मिलाने का प्रयत्न करते।

गाँधीजी को डरबन पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि भारतीयों

के मताधिकार को कुचलने के लिये 'इण्डियन फ्रेन्चाइज' नामक एक बिल सरकार पास करने जा रही है। इस अनीति का उद्देश्य भारतीयों का अस्तित्व मिटाना था। गांधीजी ने इसके विरुद्ध जन-मत खड़ा किया। इसी काम से उन्हें फिर कुछ दिनों के लिये वहाँ रुक जाना पड़ा। उन्होंने उस बिल का विरोध किया। समाचार-पत्रों में भी आन्दोलन किया। फिर भी वह बिल पास हो गया। लेकिन इससे वहाँ बसनेवाले हिन्दुस्तानियों में नवजीवन आ गया। एकता बढ़ी। अपने अधिकारों के लिये लड़ना सीखा।

गाँधीजी से वहाँ के रहनेवालों को प्रेम हो गया। उन-लोगों ने गांधीजी से प्रार्थना की कि स्थायी रूप से नेटाल में बस जायँ। गाँधीजी सर्व-साधारण के खर्च पर वहाँ नहीं रहना चाहते थे। इसलिये उन्होंने कहा कि यदि आपलोग अपने मुकदमे मुझे देते रहने का वचन दीजिये तो मैं यहाँ रह सकता हूँ। इस बात पर वे लोग सहर्ष तैयार हो गये।

नेटाल के वकीलों ने गाँधीजी का विरोध किया, परन्तु न्यायाधीश ने गाँधीजी को अदालत में वकील के रूप में कार्य करने का अधिकार प्रदान कर दिया। वस्तुतः गाँधीजी का उद्देश्य वकालत करना नहीं था। वह सार्वजनिक काम में तन्मय हो जाना चाहते थे। अतएव उन्होंने प्रयत्न कर सन्

१८९४ ई० में 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' नामक एक संस्था को जन्म दिया।

गाँधीजी ने गरीब कुलियों की भी सहायता की। उन दिनों भारतीय कुलियों के साथ गोरे अंग्रेज बहुत बुरा व्यवहार करते थे। उनकी दशा गुलामों से बदतर होती। पाँच-वर्ष का समझौता कर गोरे उन लोगों को लालच देकर अफ्रिका ले जाते। इन्हें 'गिरमिट' कहा जाता। १८९४ में नेटाल-सरकार ने इन गिरमिटियों पर प्रतिवर्ष २५ पौण्ड कर लगाने का एक बिल तैयार किया। गाँधीजी ने 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' द्वारा इसका विरोध किया। अन्त में ३ पौण्ड वार्षिक कर मंजूर हो गया।

गाँधीजी की सेवा-कार्यों के कारण दक्षिण अफ्रिका में उनकी लोकप्रियता दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही थी। छोटा-बड़ा, अमीर-गरीब, हिन्दू-मुसलमान सभी के वे सच्चे सेवक थे। इन लोगों के प्रेम के कारण गाँधीजी ने स्थायी रूप से वहाँ बसने का निर्णय किया। वहाँ उनकी वकालत भी चलने लगी थी।

दक्षिण अफ्रिका में रहते हुए गांधीजी को तीन साल हो गये थे। १८९६ ई० में वे छः महीने के लिए भारत रवाना हुए। वे अपने परिवार को भी अपने साथ दक्षिण अफ्रिका में रखना चाहते थे। इसलिए वे जहाज से भारत रवाना हुए। जहाज कलकत्ते में रुका। वहाँ उतरकर गाँधीजी ने ट्रेन से बम्बई जाने के लिये टिकट खरीदा। वे फिर बम्बई के लिये रवाना हो गये।

गांधीजी भारत लौटे

गांधीजी अपने देशवासियों को अफ्रिका की करुण कहानी सुनाना चाहते थे। भारत पहुँचकर उन्होंने अपना कार्य शुरू कर दिया।

प्रयाग में वह 'पायनियर' पत्र के सम्पादक से मिले। उनसे दक्षिण अफ्रिका में रहनेवाले भारतीयों की दुःख-गाथा कह सुनाई। उन्होंने यह आश्वासन दिया कि प्रवासी भारतीयों की चर्चा वह अपने पत्र में करेंगे।

इसके बाद गांधीजी बम्बई से सीधे राजकोट गये। वहाँ उन्होंने दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भारतीयों की स्थिति का वर्णन करते हुए एक छोटी पुस्तिका लिखी। उसका मुख्य-पृष्ठ हरे रंग का था इसलिए 'हरी पुस्तिका' के रूप में उसकी प्रसिद्धि हुई। उसकी दस हजार प्रतियाँ इन्होंने छपवायीं। उसे भारत भर के प्रसिद्ध व्यक्तियों तथा समाचार-पत्रों के पास गाँधीजी ने भेजा। सभी पत्रों में उस पर टिप्पणियाँ छपी। 'पायनियर' में उसपर एक लेख छपा जिसका सारांश विलायत होते हुए नेटाल भी पहुँचा।

उन्हीं दिनों भारत में प्लेग फैला। चारों ओर भगदड़ फैल

गई। गाँधीजी ने 'आरोग्य-विभाग' को अपनी सेवाएं अर्पित करीं। घर-घर जाकर पाखानों की जाँच करने लगे। बैरिस्टर गाँधी को इस कार्य में तनिक भी संकोच का अनुभव न हुआ। वे जनता की सच्ची सेवा करना चाहते थे।

गाँधीजी भारत के बड़े-बड़े नेताओं तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिले। दक्षिण अफ्रिका के अन्याय-अत्याचार की कहानी सबको सुनाई। न्यायमूर्ति रानाडे, सर फिरोजशाह मेहता आदि से बंबई में मिले। बम्बई में एक सभा भी की गई। फिर पूना जाकर लोकमान्य तिलक, रामकृष्ण भंडारकर, गोखले आदि से मिले। सब की सहानुभूति प्राप्त हुई। फिर मद्रास गये। वहाँ 'मद्रास स्टैंडर्ड' तथा 'हिन्दू' पत्रों के सम्पादकों से भी पूर्ण सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त हुई। यहाँ भी सभा की। 'हरीपुस्तिका' का दूसरा संस्करण दस हजार यहाँ छापना पड़ा। लोगों में बहुत उत्साह था। फिर वहाँ से गाँधीजी बंगाल गये। वहाँ के अँग्रेजी पत्र 'स्टेट्समैन' तथा 'इंग्लिशमैन' ने गाँधीजी से हुई लम्बी बातचीत अपने पत्र में छापी। भविष्य में भी सहयोग करने का आश्वासन दिया।

इसी बीच गाँधीजी को दक्षिण-अफ्रीका से फिर बुलावा आ गया। इसलिये दिसम्बर के आरम्भ में अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबा और बच्चों के साथ वे दक्षिणी अफ्रिका रवाना हो गये।

—o—

गांधीजी फिर अफ्रिका पहुँचे

१८ दिसम्बर के लगभग गांधीजी का जहाज डरबन पहुँचा। लेकिन डाक्टरी जाँच का बहाना बनाकर पाँच दिन जहाज को समुद्र में खड़ा रखा गया। वास्तव में गांधीजी की 'हरी-पुस्तिका' के प्रचार के कारण गोरे उनके विरुद्ध हो गये। वे सब प्रतिहिंसा की आग में जल रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि गांधी पुनः दक्षिण अफ्रिका में प्रवेश करे। उनलोगों ने गांधीजी के विरोध में बड़ी-बड़ी सभाएँ की, प्रस्ताव पास किये। जब उनलोगों को पता चला कि दो जहाज में आठ सौ यात्री भी गांधीजी के साथ हिन्दुस्तान से नेटाल में बसने आये हैं, तो उनकी हिंसा की आग और भड़क उठी। उनलोगों ने चेतावनी दी कि जहाज को वापस ले जाओ नहीं तो यात्रियों को समुद्र में डुबो दिया जायेगा।

गांधीजी ने यात्रियों को धैर्य दिलाया। गांधीजी अपने परिवार के सिवा और किसीको अपने साथ वहाँ बसाने के लिये नहीं ले गये थे। उनका कहना था कि वहाँ बन्दरगाह पर उतरने का उन सभी को अधिकार है। गांधीजी ने सभी चेतावनियों की उपेक्षा की। अन्त में २३ दिन बाद १३ जनवरी को जहाज से यात्रियों को उतरने की आज्ञा प्राप्त हुई।

जहाज के कप्तान को यह चेतावनी प्राप्त हुई कि गांधीजी की जान खतरे में है। गांधीजी ने अपने बाल-बच्चों को पहले ही अलग गाड़ी से सेठ रुस्तमजी के घर भेज दिया। फिर एक अंग्रेज वकील मिस्टर लाटन के साथ जहाज से उतर कर पैदल चलने लगे। जैसे ही वे जहाज से उतरे, कुछ लड़कों ने उन्हें पहचान लिया। वे 'गांधी-गांधी, चिल्लाने लगे। धीरे-धीरे आदमी एकत्र होने लगे। मि० लाटन ने देखा, भीड़ बढ़ रही है इसलिये उहोंने रिक्सा बुलाया। गोरे छोकरों ने रिक्सेवाले को भी धमका-कर भगा दिया। गांधीजी आगे बढ़े। भीड़ बढ़ती जाती थी।

भीड़ ने गांधीजी को मि० लाटन से अलग कर दिया। फिर उन पर कंकड़ और सड़े हुए अंडे बरसाने लगे। उनकी

पगड़ी गिरा दी और फिर उन्हें लात-जूतों से पीटना शुरू कर दिया। गांधीजी को मूर्छा आने लगी। उन्होंने पास के मकान के सीखचों को पकड़ कर किसी तरह साँस ली। उनपर थप्पड़ों की भी वर्षा होने लगी। उनके लिये खड़ा रहना भी कठिन हो गया।

भाग्य से उसी समय पुलिस सुपरिंटेंडेंट की पत्नी उधर से जा रही थी। वे गांधीजी को जानती थीं। उससे यह अत्याचार न देखा गया। उसने पास जाकर गाँधीजी की रक्षा के लिये अपना धूप का छाता उनपर तान दिया। इससे भीड़ कुछ हटी। इसी बीच एक हिन्दुस्तानी ने गांधीजी पर होते इस कायरतापूर्ण हमले को देखकर, फौरन जाकर पुलिस थाने में इसकी सूचना दी। पुलिस की एक टुकड़ी समय पर गांधीजी की रक्षा करने पहुँच गई। घायल गांधीजी किसी प्रकार रुस्तमजी के घर पहुँचे।

गोरों ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा। हजारों गोरों ने रुस्तमजी का मकान बाहर से घेर लिया। वे शोर मचा रहे थे—'गांधी को हमारे हवाले कर दो।'

स्थिति गंभीर होती जा रही थी। पुलिस सुपरिंटेंडेण्ट अलेक्जेंडर किसी प्रकार हँसी-मजाक कर भीड़ को शान्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। वह जानते थे कि डराने-धमकाने का अर्थ उलटा होगा। उन्होंने गांधीजी को कहलाया कि यदि आप

अपने मित्र के जान-माल को तथा मकान को और अपने बाल-बच्चों को बचाना चाहते हैं तो छिपकर इस मकान से चले जायँ। उन्होंने गांधीजी के भागने का भी प्रबन्ध करा दिया था। थाने पर ही गांधीजी के ठहरने की भी व्यवस्था की गई। उधर भीड़ को वह यह गीत सुना रहे थे—'चलो, इस गाँधी को हम इस इमली के पेड़ पर फाँसी लटका दें।'

गांधीजी अपने मित्र को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाना चाहते थे। इसलिये वह मकान छोड़कर जाने को तैयार हो गये।

जब पुलिस सुपरिंटेंडेंट को पता चला कि गांधीजी सुरक्षित रूप से थाने पर पहुँच गये हैं, तब उन्होंने भीड़ से कहा कि तुम्हारा शिकार तो हाथ से निकल गया। भीड़ को शान्त करते हुए कहा कि अगर गांधी यहाँ मिल जाय तो उसे मैं तुम्हें सौंप दूँगा। तुम अपने प्रतिनिधियों को अन्दर भेजकर देख सकते हो। लेकिन पारसी रुस्तमजी के मकान को तुम लोग मत जलाना और न गांधी के बाल-बच्चों को ही नुकसान पहुँचाना। इस प्रकार उन्होंने अपनी चतुराई से भीड़ को शान्त किया और गांधीजी की प्राण-रक्षा की।

इस दुर्घटना का जब बिलायत समाचार पहुँचा, लोग बहुत दुःखी हुए। मिस्टर चेम्बरलेन ने नेटाल सरकार को तार भेजी

कि जिन लोगों ने गांधी पर हमला किया, उनपर मुकदमा चलाया जाय। लेकिन क्षमाशील गांधीजी ने मुकदमा चलाने से इन्कार कर दिया। वे बदला नहीं लेना चाहते थे। उनका कहना था कि एक दिन स्वयं उन गुंडों को अपनी भूल ज्ञात होगी और वे दुःख प्रकट करेंगे।

गांधीजी की इस क्षमाशीलता के कारण उनकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई। समाचार-पत्रों ने गांधीजी को निर्दोष कहा तथा आक्रमणकारियों की निन्दा की। कुछ ही दिन बाद फिर ये घर जाकर रहने लगे। इनकी वकालत भी खूब चमक उठी।

धीरे-धीरे गांधीजी के जीवन में सादगी आती गई और उनका सेवा-भाव भी बढ़ता गया। एक दिन एक अपंग कोढ़ी उनके घर में भिक्षा माँगने आया। गांधीजी ने उसे खाना देकर ही न हटा दिया बल्कि उसे एक कमरे में रखा। उसके घाव को धोया और उसकी उचित सेवा की।

गांधीजी अपने कपड़ों को अपने हाथ से धोने लगे। वह स्वावलम्बी बनना चाहते थे। प्रिटोरिया में एक बार गांधीजी बाल काटने के लिए अंग्रेजी नाई की दुकान पर गये। उसने उनका बाल काटने से इनकार कर दिया तथा तिरस्कार भी किया। गांधीजी ने बाजार जाकर बाल काटने की एक कैंची खरीदी। फिर शीशे के सामने खड़े होकर अपने हाथ से अपने बाल

काटे। पीछे के बाल ठीक से कट नहीं पाये। अदालत में वकीलों ने गांधीजी का बहुत मजाक उड़ाया—'तुम्हारे सिर पर छछून्दर तो नहीं फिर गया!'

गांधीजी ने इस विनोद का बुरा न माना। उन्होंने कहा—'मेरे काले सिर को गोरा नाई कैसे छू सकता है? इसलिये जैसे तैसे हाथ कटे बाल ही अच्छे हैं।'

१८९९ ई० के लगभग 'बोअर-युद्ध' छिड़ा। गांधीजी उस समय तक ब्रिटिश राज्य-भक्त थे। यद्यपि इनके विचार बोअरों के पक्ष में थे, फिर भी वह राज्य की सेवा करना चाहते थे। इसलिये इन्होंने एक स्वयंसेवक-दल तैयार किया, जिसका काम युद्ध के घायलों की सेवा करना था। नेटाल-सरकार ने गांधीजी की प्रार्थना अस्वीकार कर दी। लेकिन इससे गांधीजी को दुःख नहीं हुआ। अन्त में बहुत प्रयत्न करने पर उन्हें सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने भारतीय गिरमिटिया (कुली) लोगों से अपना सेवा-दल बनाया।

'भारतीय सेवा-दल' ने गांधीजी के नेतृत्व में अनेक बार पीड़ितों की कुशलता से सेवा कर सबका मन जीत लिया। धीरे-धीरे इस दल की लोकप्रियता बढ़ गई।

बोअर-युद्ध समाप्त हो जाने के बाद, गांधीजी स्वदेश लौटना चाहते थे। लेकिन प्रवासी भारतीय उन्हें छोड़ना नहीं चाहते

थे। गांधीजी ने वचन दिया कि यदि फिर मेरी आप लोगों को आवश्यकता होगी तो एक वर्ष बाद पुनः मैं यहाँ आ जाऊँगा।

गांधीजी की विदाई के समय अनेक बहुमूल्य उपहार दिये गये। भेंट में सोने-चाँदी तथा हीरे के आभूषण दिये गये। उन भेंटों में एक पचास गिन्नी का हार कस्तूरबा के लिये मिला था। गांधीजी अजीब उलझन में पड़े। क्या सेवा का भी कुछ मूल्य होता है! सेवा के उपलक्ष्य में इन चीजों को कैसे ग्रहण किया जाय। सेवा तो बिना दाम की होती है।

गांधीजी ने सब बहुमूल्य वस्तुएँ एक ट्रस्ट को सौंप देने का निश्चय किया। धर्मपत्नी तैयार न होतीं। उनका कहना था कि मेरे सोने के हार पर तुम्हारा क्या अधिकार? गाँधीजी ने पूछा कि यह मेरी सेवा के बदले प्राप्त हुआ या तुम्हारी सेवा के बदले? इस पर श्रीमती कस्तूरबा की आँखों में पानी भर आया। वे उस हार को खुद नहीं पहनना चाहती थीं, भविष्य में अपनी बहुओं के लिये सुरक्षित रखना चाहती थीं। वे बोली 'तुम्हारी सेवा में क्या मेरी सेवा नहीं है? मुझसे जो रात-दिन मजूरी कराते हो, क्या यह सेवा नहीं है? मुझे रुला-रुलाकर जो ऐरे-गैरों को घर में रखा और मुझसे सेवा-टहल कराई, वह कुछ भी नहीं है?'

गांधीजी नहीं माने। उन्होंने अन्त में कस्तूरबा को समझा-बुझाकर राजी कर लिया। इस प्रकार गांधीजी ने अपनी सार्वजनिक सेवा का कोई पुरस्कार स्वीकार न कर, एक उच्च-आदर्श सबके सामने रखा।

फिर भारत आये

१६०१ में गांधीजी पुनः भारत आए। उसी वर्ष कलकत्ते में कांग्रेस का महाधिवेशन हो रहा था। गांधीजी दक्षिण अफ्रिका के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव उस सम्मेलन में पास कराना चाहते थे। इसलिये गांधीजी भी कलकत्ते के लिये रवाना हुए। उसी गाड़ी से सर फिरोजशाह मेहता भी जा रहे थे। गांधीजी की बातें सुनकर वे बोले कि जब अपने देश में ही हमें अधिकार नहीं प्राप्त हैं, तब उपनिवेशों में हमारी दशा कैसे सुधर सकती है?

गांधीजी कलकत्ते में रियन कालेज में ठहराये गये। वहाँ स्वयंसेवकों की व्यवस्था ठीक नहीं थी। सेवा-भाव का लोग मर्म तक नहीं जानते थे। उन्हें न उचित शिक्षा प्राप्त थी, न साथ मिलकर काम करने का अभ्यास ही था। प्रतिनिधि भी अपने हाथ से कुछ काम नहीं करते, स्वयंसेवकों पर हुक्म चलाते। छुआछूत का विचार भी बहुतों को था। गंदगी भी चारों तरफ खूब थी। पखाने कम थे, बदबू अधिक थी। स्वयंसेवक इसे भंगी का काम समझते। गाँधीजी ने झाड़ू लेकर खुद पाखाना साफ किया। लेकिन सब पखाने साफ करना सरल न था। इसलिये वह कम से कम अपने लिये साफ कर लेते। उन्हें गन्दगी और अव्यवस्था देखकर बहुत दुःख हुआ। रात में बहुत से लोग

उठकर बरामदे में ही पाखाना कर देते। कोई स्वयंसेवक इस गन्दगी को साफ करने को तैयार ही नहीं होता। अन्त में गांधीजी ने स्वयं उस गन्दगी को साफ किया। उन्हें छोटे से छोटे काम से भी घृणा नहीं थी।

गांधीजी ने कांग्रेस दफ्तर में एक साधारण क्लर्क का काम किया। उन्हें यह देखकर दुःख हुआ कि कांग्रेस में समय का बहुत अपव्यय होता है। सारा काम अंग्रेजी में होता है। कांग्रेस की बैठक में कितनी आसानी से प्रस्ताव पास हो जाते हैं, उसे देखकर भी गांधीजी को आश्चर्य हुआ। जिस समय लोग

प्रस्ताव को एकमत से पास करने के लिये अपने हाथ ऊपर उठा देते हैं। कोई प्रस्ताव का विरोध नहीं करता। गांधीजी का दक्षिण अफ्रिका सम्बंधी प्रस्ताव भी इसी प्रकार सहज ढंग से सर्वसम्मति से पास हो गया। गांधीजी को पूर्ण संतोष तो नहीं हुआ, लेकिन यह सोचकर खुशी हुई कि उनके प्रस्ताव पर कांग्रेस जैसी भारत की प्रसिद्ध संस्था की मोहर लग गई।

महासभा का अधिवेशन समाप्त हो गया लेकिन गांधीजी कलकत्ते में रहकर दूसरे बड़े नेताओं से परिचय प्राप्त करना चाहते थे। गोखले को जब यह पता चला तो उन्होंने गांधीजी को अपने पास रोक लिया। लगभग एक महीने तक गांधीजी श्री गोखले के साथ रहे। वे उनसे बहुत प्रभावित हुए।

गांधीजी इस देश की जनता के निकट रहकर उसके दुःख-दर्द का अध्ययन करना चाहते थे। इसलिये कलकत्ते से राजकोट तक उन्होंने रेल के तीसरे दर्जे में यात्रा की। वे रास्ते में एक दिन के

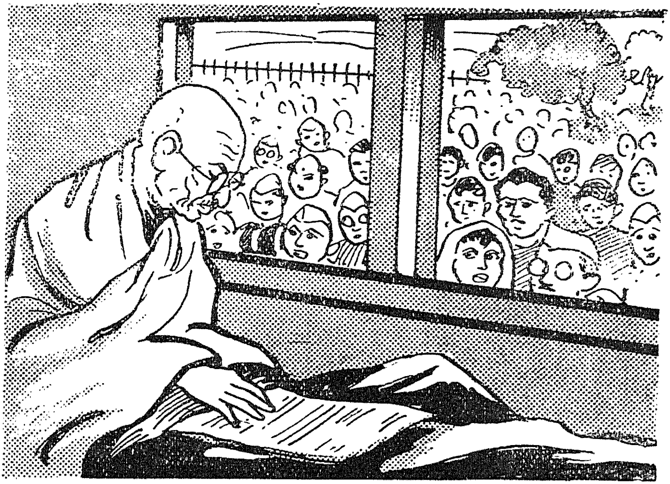

लिए काशी में भी रुके। काशी-विश्वनाथ मंदिर के आस-पास का गन्दा वातावरण देखकर उनको बहुत दुःख हुआ। पंडों की गुंडई का भी उन्हें दुखद अनुभव हुआ। यात्रियों को अपशब्द कहना पंडों के लिए एक साधारण बात थी। उन्हें इस तीर्थ में शान्ति नहीं मिली।

काशी में गाँधीजी ने बीमार मिसेज एनो बेसेंट के भी दर्शन किये।

भारत में इसप्रकार गांधीजी की वकालत चल निकली। वह राजकोट छोड़कर बम्बई में रहने लगे। अभी साल भर भी नहीं बीता था कि दक्षिण अफ्रिका से बुलावा आ गया। वहाँ चेम्बर-लेन आ रहे थे। उनसे एक प्रतिनिधि-मंडल मिलने वाला था। गांधीजी को भी उसमें सम्मिलित होना था। इसलिये त्याग-मूर्ति गांधीजी अपनी चलती हुई वकालत को लात मार, बाल-बच्चों को अकेला छोड़कर फिर अफ्रिका चल दिये। उन्हें अपना दिया हुआ बचन याद था।

कर्मवीर गांधी दक्षिण अफ्रिका में

१९०२ के अन्त में गांधीजी तीसरी बार अफ्रिका गये। वह अपने परिवार को बम्बई में छोड़ गये थे। उनका अनुमान था कि वह दक्षिण अफ्रिका का काम समाप्त कर शीघ्र भारत लौट जायेंगे। लेकिन वहाँ पहुँचकर उन्हें ज्ञात हुआ कि अभी एक लम्बी लड़ाई लड़नी है।

औपनिवेशिक मंत्री श्री चेम्बरलेन उन दिनों दक्षिण अफ्रिका में आये हुए थे। गांधीजी के नेतृत्व में हिन्दुस्तानियों का एक प्रतिनिधि-मंडल चेम्बरलेन से मिला तथा उन्हें पीड़ित भारतीयों की करुण दुःख-गाथा सुनाई। मगर स्वार्थ ने सत्य और न्याय का गला घोंटा। चेम्बरलेन अपने स्वार्थ के लिये दक्षिण अफ्रिका गये थे। उन्हें वहाँ के गोरों को प्रसन्न कर साढ़े तीन करोड़ पौण्ड की लम्बी धन-राशि लेनी थी। अतएव गांधीजी को उनसे निराश ही होना पड़ा। फिर भी गांधीजी हतोत्साहित नहीं हुए।

नेटाल से चेम्बरलेन ट्रांसवाल पहुँचे। वहाँ के भारतीयों ने भी गाँधीजी को अपनी दुःखगाथा चेम्बरलेन तक पहुँचाने के लिये आमन्त्रित किया था। लेकिन प्रिटोरिया पहुँचना सहज नहीं था। बात यह थी कि बोअर युद्ध के समय ही ट्रांसवाल लगभग उजाड़ हो चुका था। लोग अपने मकान और दुकान छोड़कर भाग

गये थे। उन्हें अब पुनः बसाया जा रहा था। गोरे नहीं चाहते थे कि वहाँ फिर हिन्दुस्तानी बसें। इस कारण वहाँ बसने के लिये एक 'अनुमति-पत्र' लेना आवश्यक कर दिया गया। गोरों को तो वह तुरंत मिल जाता, लेकिन हिन्दुस्तानियों को बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ती थी।

इस रंग-भेद की नीति पर परदा डालने के लिये सरकार ने एक नया 'एशियाटिक विभाग' खड़ा कर दिया। जब यह विभाग पुष्टि कर देता कि यह व्यक्ति पहले ट्रांन्सवाल में रहता था, तभी वहाँ बसने के लिये अनुमति-पत्र प्राप्त होता। ट्रांसवाल में बसने के इच्छुक बहुत लोग थे। अतएव घूस का बाजार गर्म हो उठा। दलालों द्वारा इस विभाग के अधिकारी सौ पौंड तक एक व्यक्ति से वसूल लेते। इस प्रकार गरीब हिन्दुस्तानी बुरी तरह लूटे जा रहे थे।

गांधीजी को वहाँ पहुँचना आवश्यक था। इस आड़े वक्त उन्होंने अपने पुराने मित्र पुलिस सुपरिंटेंडेंट एलेक्जेंडर को याद किया। उनकी सहायता से गांधीजी को फौरन अनुमति-पत्र प्राप्त हो गया। वे प्रिटोरिया रवाना हो गये।

वहाँ पहुँचकर भारतीयों की कठिनाई का उल्लेख करते हुए गांधीजी ने एक प्रार्थना-पत्र तैयार किया। परन्तु गोरे गांधीजी को चेम्बरलेन से मिलने नहीं देना चाहते थे। पहले उन्होंने

गांधीजी को गिरफ्तार करने का षड्यन्त्र रचा। उनका अनुमान था कि गांधीजी बिना अनुमति-पत्र के यहाँ आ गये हैं। अतएव इसी अभियोग में उन्हें बन्दी बना लिया जाय। परन्तु डरबन से जब उन्हें ज्ञात हुआ कि गांधीजी के पास अनुमति-पत्र है तो वह हाथ मलते रह गये।

उन लोगों ने प्रतिनिधि-मंडल के सदस्यों के नाम माँगे। फिर एक बड़े अफसर ने गांधीजी को बुलाकर कहा कि भूल से तुम्हें अनुमति-पत्र मिल गया है, तुम ट्रांसवाल छोड़कर चले जाओ। तुम यहाँ के रहने वाले नहीं हो। फिर एक चिट्ठी द्वारा प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्यों को सूचित किया कि डरबन में गांधी, चेम्बरलेन से मिल चुके हैं, इसलिये प्रतिनिधि-मंडल से उनका नाम निकाल देना जरूरी है।

गांधीजी ने इस अपमान और अन्याय को भी जहर के घूँट की तरह पी लिया। लेकिन उन्होंने निश्चय किया कि अब ट्रांसवाल में ही रहकर भारतीयों के अधिकारों के लिए संघर्ष करूँगा। फलतः वहीं बसकर वकालत करने का उन्होंने निश्चय किया। 'एशियाटिक विभाग' की धाँधलियों का भी वे विरोध करना चाहते थे। सौभाग्य से वहाँ वकालत करने की आज्ञा उन्हें प्राप्त हो गई। जोहान्सबर्ग में उन्होंने अपना दफ्तर भी खोल लिया।

१६०४ में 'इण्डियन ओपिनियन' नामक एक पत्र की स्थापना की। यद्यपि मनसुखलाल इसके सम्पादक थे, फिर भी सारा बोझ गाँधीजी पर ही रहता। यह साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ में गुजराती, हिन्दी, तामिल और अंग्रेजी में निकलता था, परन्तु कुछ दिनों बाद हिन्दी तथा तामिल संस्करणों को बन्द कर देना पड़ा। इस पत्र के माध्यम से गांधीजी भारतीयों में एकता एवं जागृति उत्पन्न करना चाहते थे। वे भारतीयों के कष्टों को अधिकारियों तक इसी पत्र के माध्यम से पहुँचाते। एक ओर इस पत्र की लोकप्रियता बढ़ी, दूसरी ओर आर्थिक संकट भी बढ़ता जाता। पत्र का प्रकाशन बन्द कर देने से भारतीय-समाज की बदनामी होती। गांधीजी को इसलिये अपने पास से रुपये लगाने पड़ते। कभी-कभी ७५ पौण्ड तक मासिक अपने पास से खर्च करना पड़ता। लेकिन गांधीजी को इस बात की खुशी होती कि इस पत्र के द्वारा वह अपनी बात लोगों तक पहुँचा देते हैं। इसी अखबार से गांधीजी को वहाँ 'सत्याग्रह' आंदोलन प्रारम्भ करने में सफलता प्राप्त हुई। वे समाचार पत्र द्वारा मुनाफा नहीं कमाना चाहते थे, बल्कि सेवा करना चाहते थे।

कुछ दिन बाद वहाँ 'काला प्लेग' नामक महामारी फैली। गांधीजी ने सच्चे मन से पीड़ितों एवं बीमारों की सेवा की। उनके साथी भी इस काम में जुट गये। अपने प्राणों की बाजी लगाकर लोगों के गन्दे पखाने साफ किये। २३ रोगियों में से केवल २

बचे। शेष मर गये। नर्स भी बाद में प्लेग से मर गई। गांधीजी ने अपने पत्र में प्लेग के सम्बन्ध में एक लेख भी लिखा।

अपने पत्र के काम से गांधीजी को नेटाल जाना पड़ा। 'क्रिटिक' के सम्पादक मि० पोलक ने उन्हें रास्ते में पढ़ने के लिये, रस्किन की एक पुस्तक 'अंटु दिस लास्ट' दी। उसे पढ़कर गांधीजी बहुत प्रभावित हुए। बाद में इसी पुस्तक का 'सर्वोदय' के नाम से गांधीजी ने अनुवाद भी किया। गांधीजी के विचारों में एक नया मोड़ उत्पन्न हुआ। गुजराती में उन्होंने अपनी आत्मकथा में 'सर्वोदय' के सिद्धान्त की इस प्रकार व्याख्या प्रस्तुत की है।

१—सबके भले में अपना भला है।

२—वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक-सी होनी चाहिये।

३—मजदूर और किसान का सादा जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली दो बातों में गांधीजी पहले से ही विश्वास रखते थे, लेकिन तीसरी बात ने उनका 'कायाकल्प' ही कर दिया। उनके हृदय में यहीं से 'सर्वोदय' का अंकुर जमा। गांधीजी ने अपना जीवन भी इसी सिद्धान्त के अनुकूल बनाने का निश्चय किया।

गांधीजी ने डरबन पहुँचकर अपने पत्र के कार्यकर्ताओं के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि प्रेस को शहर से दूर किसी एकांत स्थल में ले चला जाय। वहाँ सब लोग मिलकर सादे ढंग से रहें, सादा एक-सा भोजन करें और आश्रम का जीवन व्यतीत करें। सब कार्यकर्ता तैयार हो गये। डरबन से तेरह मील दूर 'फिनिक्स' में १००० पौंड में १०० एकड़ जमीन खरीद ली गई। एक महीने में ७५ फीट लम्बा और ५० फीट चौड़ा मकान भी तैयार हो गया। एक सप्ताह बाद गाड़ियों पर सब सामान लादकर, पूरा कार्यालय फिनिक्स के इस 'आश्रम' में स्थापित कर दिया गया। सब वहाँ मिलकर रहने भी लगे। १९०४ में इस फिनिक्स की स्थापना हुई। बाद में 'क्रिटिक' के सम्पादक मिस्टर पोलक

भी नौकरी छोड़कर, फिनिक्स में जा बसे। धीरे-धीरे फिनिक्स एक छोटा सा गाँव बन गया जिसमें हिन्दुस्तानियों के साथ श्री वेस्ट तथा श्री पोलक जैसे उत्साही अंग्रेज नवयुवक भी सपरिवार रहने लगे।

१६०४ में जूलूवालों ने विद्रोह कर दिया। गांधीजी उस समय तक भी ब्रिटिश राज्य भक्त थे। उन्होंने नेटाल के गवर्नर को पत्र लिखा कि घायलों की सेवा करने के लिए 'भारतीय सेवादल' के साथ मैं वहाँ जाने को तैयार हूँ। प्रार्थना स्वीकार हो गई। गांधीजी डरबन पहुँचे। एक टुकड़ी तैयार की। गांधीजी को 'सारजंट मेजर' का पद दिया गया। वर्दी भी सबको सरकार ने दी। जुलू घायलों की सेवा का काम उन्हें सौंपा गया, जिसे गांधीजी ने पसन्द भी बहुत किया। गांधीजी ने अनुभव किया कि निर्दोष जुलूओं पर अङ्गरेजों ने बहुत अमानुषिक अत्याचार किया। गांधीजी ने इसे लड़ाई नहीं मनुष्य का शिकार माना। उनका कसूर यही था कि बढ़े हुए कर को देने से उन्होंने इन्कार कर दिया, तथा कर वसूल करने वाले एक सारजेंट को उन लोगों ने मार डाला था। गांधीजी और उनके दल का प्रेम पाकर वे लोग बहुत खुश हुए।

गांधीजी को यह जानकर बहुत दुख हुआ कि हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध एशियाटिक कानून का मसविदा तैयार हो रहा है। गांधीजी ने जोहान्सबर्ग जाकर भारतीयों की एक बड़ी सभा की

और इस 'खूनी कानून' के सम्बन्ध में उन्हें बताया। भारतीयों में नव-उत्साह उत्पन्न हुआ। गांधीजी ने इस 'खूनी कानून' का विरोध करने से पूर्व सरकारी अधिकारियों तथा औपनिवेशिक मंत्री श्री डंकन से सम्पर्क स्थापित किया। स्त्रियों से सम्बन्धित धाराएँ हटा दी गई। परन्तु केवल इतने से गांधीजी को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' के माध्यम से पाठकों की राय लेने के बाद इस संघर्ष को 'सत्याग्रह' नाम दिया।

विरोध एवं सत्याग्रह होने पर भी १२ सितम्बर १९०६ को यह कानून पास हो गया। अब केवल 'बादशाह' (किंग) की स्वीकृति बाकी थी। गांधीजी, हाजी वजीर के साथ विलायत गये। दादा भाई नौरोजी से मिले। ऐंग्लो इंडियन श्री लेपन ग्रीफन को साथ लेकर गांधीजी और हाजी वजीर लार्ड एल्गिन और भारत-मंत्री श्री मार्ले से मिले। लेकिन कोई सफलता न मिली।

'साउथ अफ्रिका ब्रिटिश इण्डियन कमेटी' की विलायत में गांधीजी ने स्थापना की। इसके मंत्री मिस्टर रिच बनाये गये। बाद में इस संस्था से गांधीजी को दक्षिण अफ्रिका की लड़ाई में बहुत सहायता प्राप्त हुई।

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रिका में पद-दलित भारतीयों का योग्य नेतृत्व किया। उनके विरोध को न केवल वाणी प्रदान की, बल्कि सक्रिय भी बनाया। उनके दुःख में उनका साथ दिया। सेवा के बल पर सबका मन जीत लिया। त्याग का महत्व

समझाया। संक्षेप में वहाँ उनका जीवन ही आदर्शों का मूर्त-रूप बन गया था।

सन् १९१४ में जब दक्षिण अफ्रिका में सत्याग्रह संग्राम का अन्त हो गया, तब श्री गोखले की प्रेरणा से गांधीजी नें इंगलैंड होकर, भारत लौटने का निश्चय किया। जब वे इंगलैंड पहुंचे, प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हो चुका था। गाँधीजी ने पुनः सेवा-दल का निर्माण किया और युद्ध में घायल सैनिकों की सेवा की।

१८ जुलाई १९१४ को गांधीजी फिर अपनी मातृ-भूमि भारत में पहुंच गये। यहाँ से उनके जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण अध्याय प्रारम्भ होता है।

भारतीय किसान-मजदूर और गांधीजी

गांधीजी का भारत पहुंचने पर हार्दिक स्वागत हुआ। कई स्वागत सभाओं का आयोजन किया गया। गुजरातियों ने भी एक स्वागत सभा का आयोजन किया। गुजराती होने के कारण मिस्टर जिन्ना भी उसमें आए। उन्होंने भी, एक छोटा सा अंग्रेजी में भाषण दिया। दूसरे वक्ताओं ने भी अंग्रेजी के माध्यय से अपने विचार प्रकट किये। गांधीजी ने गुजराती भाषा में ही उत्तर दिया और गुजराती तथा हिन्दुस्तानी भाषा के पक्ष में अपने विचार प्रकट किये। उन्होंने गुजरातियों की सभा में अंग्रेजी-भाषा के प्रयोग के प्रति अपना नम्र विरोध प्रदर्शित किया।

बम्बई के गवर्नर से मिलने के बाद गांधीजी पूना गये। वहाँ गोखले से मिले। गोखले चाहते थे कि गांधीजी को 'भारत सेवक समिति' का सदस्य बना लिया जाय। लेकिन गांधीजी की इच्छा फिनिक्स की भांति भारत में भी एक आश्रम स्थापित करने की थी। गोखले ने गांधीजी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इससे गांधीजी को उत्साह प्राप्त हुआ।

राजकोट से गांधीजो शांति-निकेतन गये। वहाँ काका साहब कालेलकर से उनकी पहली भेटँ हुई। गांधीजी ने वहाँ अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया। शारीरिक श्रम

का महत्व बताते हुए यह प्रस्ताव रखा कि विद्यार्थी और शिक्षक यदि अपना भोजन खुद पकाये तो अच्छा हो। सबको यह प्रस्ताव पसंद आया।

गांधीजी शुरु से ही गिरमिट प्रथा या कुली-प्रथा के विरोधी थे। दक्षिण अफ्रिका में इन पर होने वाले अत्याचारों को गांधीजी अपनी आँख से देख चुके थे। ३ पौंड का जो वार्षिक कर इन पर वहाँ लगाया गया था वह १९१४ में उठा लिया गया। लेकिन यह प्रथा बंद नहीं हुई थी। १९१६-१७ में महामना मालवीयजी ने इस प्रथा को समाप्त कर देने का धारा-सभा में प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव स्वीकार न हुआ। गांधीजी इस सम्बंध में वाइसराय से मिले। कोई विशेष संतोषजनक परिणाम न निकला। ३१ जुलाई तक इस प्रथा को बन्द कर देने की सरकार से उन्होंने प्रार्थना की। गांधीजी ने इस प्रश्न को लेकर भारत का दौरा किया। जगह-जगह बड़ी सभाएँ की गयी। चारों ओर इस प्रथा के विरोध का उत्साह उमड़ पड़ा। ३१ जुलाई से पहले ही कुली प्रथा बंद करने की सरकारी घोषणा प्रकाशित हुई! गांधीजी की यह महान सफलता थी। १८९४ ई० में गांधीजी ने इस 'अर्ध गुलामी प्रथा' का विरोध करने के लिये पहली दरखास्त लिखी थी। इसलिये इस विजय एवं सफलता पर उन्हें बहुत हर्ष तथा सन्तोष हुआ।

चम्पारन के निर्धन कृषकों की दुःख गाथा गांधीजी के कान तक पहुंची। गांधीजी कान से अधिक आँख पर विश्वास करते थे। इसलिये चम्पारन जाकर, स्वयं वस्तु-स्थिति की जाँच करने का उन्होंने निश्चय किया। उन्हें पता चला कि चम्पारन के किसान अपनी जमीन के ३/२० भाग में नील की खेती, मालिकों के लिये करने को बाध्य किये जाते हैं। २० कट्ठे का एक एकड़ होता था, उसमें से ३ कट्ठे नील बोना पड़ता था। इसलिये इस प्रथा का नाम 'तीन कठिया' पड़ गया था। इन नील के खेतों के मालिक गोरे थे।

बिहार में गांधीजी ने बृजकिशोर बाबू, राजेन्द्र बाबू तथा आचार्य कृपलानीजी से भी भेंट की। गांधीजी से सभी लोग बहुत प्रभावित हुए। सरकार ने गांधीजी को चम्पारन छोड़ने की नोटिस दी। गांधीजी ने इस आज्ञा का सविनय विरोध किया। वे जेल जाने को भी तैयार थे। उनपर मुकदमा चलाया गया जो बाद में लाट साहब के हुक्म से उठा लिया गया।

गांधीजी ने वहाँ के किसानों का दुख-दर्द सुना तथा समझा। अपने स्वयं-सेवक तथा स्वयं-सेविकाओं की सहायता से गाँव-गाँव में पाठशालाएँ खोली, लोगों को सफाई की शिक्षा दी। गोरों ने गांधीजी का बहुत विरोध किया, लेकिन अन्त में सरकार को झुकना पड़ा। गवर्नर ने एक-जांच समिति नियुक्त की जिसका

सदस्य गांधीजी को भी बनाया। इस समिति ने किसानों की शिकायतों को उचित बताया। सरकार ने 'तीन कठिया' कानून रद्द कर दिया और इसके साथ निलहों का राज्य भी समाप्त हो गया। किसानों को नव-जीवन तथा नव-उत्साह प्राप्त हुआ। गांधीजी को भारत की सच्ची आत्मा का दर्शन यहाँ प्राप्त हुआ।

चंपारन के बाद गांधीजी को खेड़ा के किसानों तथा अहमदाबाद के मजदूरों ने याद किया। गांधीजी अहमदाबाद पहुंचे। उन्होंने देखा मजदूरों का वेतन बहुत कम है। वेतन बढ़ाने की माँग बहुत दिनों से की जा रही थी लेकिन मिल मालिकों के कानों पर जूँ भी नहीं रेंगती थी। मजदूरों का पक्ष उन्हें बहुत मजबूत लगा। मालिकों ने गांधीजी की राय मानकर पंच की मध्यस्थता के औचित्य को स्वीकार नहीं किया। गांधीजी ने बहुत सोच-समझकर मजदूरों को हड़ताल की सलाह दी। लेकिन उनलोगों को समझा भी दिया कि किसी भी दशा में शान्ति भंग न हो।

इसी हड़ताल के प्रसंग में गांधीजी का सरदार बल्लभभाई पटेल और श्री शंकरलाल बैंकर से निकट परिचय हो गया। यह हड़ताल सफलता पूर्वक २१ दिन तक चली। साबरमती में रोज इन मजदूरों की सभा होती और गांधीजी इनलोगों को प्रतिज्ञा का स्मरण कराते। धीरे-धीरे मजदूर ढीले पड़ने लगे।

काम पर जानेवाले मजदूरों से हड़ताली मजदूरों का द्वेष बढ़ता गया। इस बात की आशंका उत्पन्न हुई की कहीं वे हिंसक न हो उठे। उनका उत्साह भी मन्द पड़ता जा रहा था।

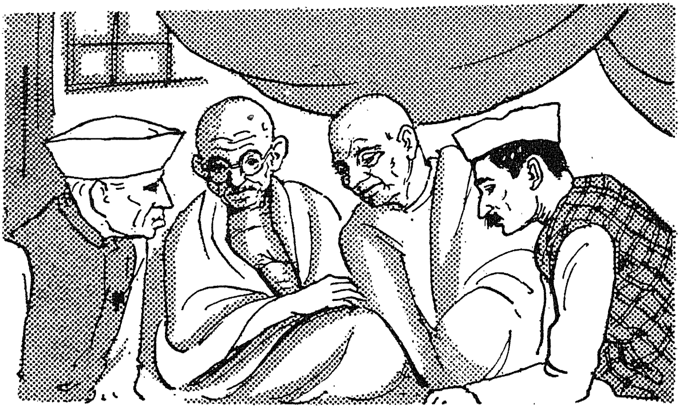

गांधीजी ने घोषित किया कि यदि मजदूर हड़ताल न निभा सकें, तो मैं उपवास प्रारम्भ कर दूँगा। गांधीजी के उपवास का मिल-मालिकों पर उचित प्रभाव पड़ा। मजदूरों की बहुत सी माँगे स्वीकार कर ली गई तथा गांधीजी को उपवास अधिक न करना पड़ा।

इसके बाद ही गाँधीजी को 'खेड़ा-सत्याग्रह' प्रारम्भ करना पड़ा। खेड़ा जिले में अकाल की स्थिति हो जाने पर भी लगान माफ नहीं किया गया। इसलिये सरकार की उपेक्षा एवं दृढवा-दिता से लाचार होकर गांधीजी ने सत्याग्रह प्रारम्भ करने का

निश्चय किया। सरदार पटेल अपनी चलती हुई वकालत को लात मारकर इस सत्याग्रह में भाग लेने आ पहुंचे। इसी प्रकार श्री शंकरलाल बैंकर, श्री इन्दुलाल याज्ञिक, अनसूया बहन तथा श्री महादेव देसाई भी वहाँ पहुंच गये।

गांधीजी ने सत्याग्रहियों को सादगी एवं विनय का पाठ पढ़ाया। उन्हें सत्याग्रह चलाने के लिये धन की आवश्यकता न थी, फिर भी उदार सेठों ने दिल खोलकर रुपये भेजें। दिन पर दिन सरकार का दमन-चक्र उग्र एवं कठोर होता गया। अन्त में सरकार इस बात पर राजी हो गई कि यदि धनी पट्टीदार लगान चुका दे तो गरीबों का लगान माफ कर दिया जायेगा। इस प्रकार सत्याग्रह की यह लड़ाई समाप्त हो गई तथा गुजरात के किसान वर्ग में भी तब जागृति की लहर फैल गई।

भारत में गांधीजी की इन प्रारम्भिक सफलताओं ने उनकी लोकप्रियता बहुत बढ़ा दी। भारत के करोड़ों पीड़ित एवं पद-दलित लोगों ने गांधीजी को अपना सच्चा हितैषी एवं नेता माना। और तब :—

'चल पड़े जिधर दो डग मग में, चल पड़ें कोटि पग उसी ओर।'

—०—

गांधीजी का असहयोग आन्दोलन

उन दिनों प्रथम महायुद्ध चल रहा था। वाइसराय ने गांधी जी को दिल्ली बुलाया। गांधीजी ने युद्ध में राज्य की सहायता का आश्वासन, भविष्य के विश्वास पर दे दिया। उन्होने युद्ध के लिए रंगरूटों की भर्ती प्रारम्भ कर दी। लेकिन गांधीजी के बहुत से मित्रों को उनकी यह बात पसन्द न आई। उन लोगों ने इस कार्य में विशेष मदद भी नहीं की। गांधीजी गाँवों में पैदल जाकर लोगों को समझा रहे थे। वे अस्वस्थ हो गये। दिन पर दिन उनकी हालत नाजुक होती गई। लेकिन न उन्होंने दवा पी, न दूध ही लिया। इसके लिये वह पहले ही प्रतिज्ञा कर चुके थे। किसी प्रकार ईश्वर ने उनको नव-जीवन प्रदान किया।

१९१८ ई० में विश्व-युद्ध समाप्त हो गया। भारत को 'होम रूल' देना तो दूर रहा, ऊपर से 'रौलेट-एक्ट' लाद दिया गया। गांधीजी ने इसका बहुत विरोध किया। वाइसराय को पत्र लिखा। समाचार-पत्रों में आन्दोलन खड़ा किया। लेकिन कुछ भी फलन निकला। गांधीजी ने इसके विरोध में ६ अप्रैल को सारे भारत में हड़ताल करने को कहा। दिल्ली में ३० मार्च को ही हड़ताल हो गई। हिन्दू-मुस्लिम एकता का अभूतपूर्व दृश्य था। दिल्ली में जुम्मा मसजिद में मुसलमानो ने स्वामी श्रद्धानन्दजी को भाषण

देने के लिये बुलाया। अंग्रेज इस एकता से चिढ़ गये। उन्होंने नागरिकों के शान्त जुलूस पर गोलियाँ चलाई।

सारे देश में हल-चल मच गई। गांधीजी के आह्वान पर सारे देश में अभूतपूर्व हड़ताल हुई। पंजाब में 'जलियाँवाला हत्याकाण्ड' अंग्रेज शासकों की बर्बरता का सूचक था। गांधीजी पंजाब के लिये चल पड़े। उन्हें सीमा पर गिरफ्तार कर बम्बई ले जाकर छोड़ दिया गया। उन्हें पंजाब में प्रवेश नहीं करने दिया गया। इससे असन्तोष की दबी आग और भड़क उठी। अहमदाबाद में एक सिपाही का उत्तेजित मजदूरों ने खून कर दिया। वहाँ

मार्शल ला जारी कर दिया गया। इसी प्रकार बम्बई में अहिंसक जनता के जुलूस पर घुड़सावार सिपहियों के घोड़े दौड़ा दिये गये।

गांधीजी को इन घटनाओं से हार्दिक दुःख हुआ। उन्होंने अपना 'सत्याग्रह-आन्दोलन' वापस लेने की घोषणा की। उनका कहना था कि जब तक लोग शान्ति का पाठ न सीख ले, 'सत्याग्रह' स्थगित रखना ही उचित रहेगा। उन्होंने इसे अपनी 'हिमालय जैसी भूल' कहकर स्वीकार किया है।

गांधीजी ने सत्याग्रही स्वयंसेवकों का दल तैयार करना शुरू किया। उनके द्वारा वे अशिक्षित जनता को सविनय अवज्ञा की शिक्षा दिलाना चाहते थे। बिना 'सत्याग्रह' का अर्थ समझाये, जनता को सत्याग्रह करने का उपदेश देना उन्हें अनुचित लगा। गांधीजी ने 'यंगइंडिया' तथा 'नवजीवन' द्वारा लोगों को सत्याग्रह की शिक्षा देनी शुरू की। धीरे-धीरे इन पत्रों की लोकप्रियता बढ़ी और ग्राहक संख्या भी बढ़ते-बढ़ते चालीस हजार तक जा पहुँची। गांधीजी इन पत्रों में विज्ञापन छापने के भी विरुद्ध थे।

पंजाब में अंग्रेजों का अत्याचार बढ़ता जा रहा था। जनता का 'फौजी-कानून' के सहारे दमन किया जा रहा था। गांधीजी इससे बहुत दुःखी हुए। उन्होंने अपने पत्रों में इस अत्याचार की खूब निन्दा की। वे पंजाब भी गये। वहाँ पण्डित मोतीलाल नेहरू से गांधीजी का पहली बार परिचय हुआ। महामना मालवीयजी तथा स्वामी श्रद्धानंदजी पहले से ही वहाँ पर थे। पंजाब के दूसरे नेता जेल में पड़े थे। गांधीजी का पंजाब में हार्दिक स्वागत

हुआ। गांधीजी ने दूसरे नेताओं के साथ पंजाब के गाँवों का दौरा किया। उन्हें रोज अंग्रेजी अत्याचार के नये किस्से सुनने को मिलते। गांधीजी को कभी स्वप्न में भी आशा न थी कि अपने राज्य को कायम रखने के लिये, अंग्रेज इतने क्रूर भी हो सकते हैं। उनकी अमानुषिकता ने गांधीजी के पुराने विश्वासों को बदल दिया।

दिल्ली में हिन्दू-मुसलमानों की एक संयुक्त सभा हुई। उसमें 'खिलाफत' और 'गोरक्षा' के प्रश्नों पर विचार किया गया। गांधीजी ने इन दोनों प्रश्नों को एक में मिलाने का विरोध किया। उस सभा में पहली बार अंग्रेजों का प्रभावपूर्ण विरोध करने के लिये, गांधीजी ने 'असहयोग' (नान को-आपरेशन) शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने कहा कि सरकारी नौकरी करने के लिये या सरकारी उपाधियां धारण करने के लिये हम बाध्य नहीं है। यदि सरकार हमारी धार्मिक भावनाओं का आदर नहीं करेगी, तो उसका विरोध करने का हमें अधिकार है।

१९२० में कांग्रेस महासमिति की कलकत्ते में बैठक हुई। उसमें गांधीजी का असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। गांधीजी खिलाफत और पंजाब के अन्याय को आधार बनाकर 'असहयोग-आन्दोलन' प्रारम्भ करना चाहते थे। लेकिन दूसरे बड़े नेताओं का सुझाव मानकर, गांधीजीने प्रस्ताव में 'स्वराज्य' शब्द भी जोड़ दिया। अब 'स्वराज्य' के लिये 'असहयोग' आन्दोलन

प्रारम्भ करने का निश्चय हुआ । कांग्रेस का वार्षिक-अधिवेशन नागपुर में हुआ । उसमें भी अहिंसात्मक असहयोग का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हो गया ।

गांधीजी ने भारतीय जनता से अपील की कि विदेशी सरकार को किसी भी प्रकार की सहायता नहीं देनी चाहिये । गांधीजी ने देश को नया रास्ता बताया । पूरे भारत में असहयोग की धूम मच गई । वकीलों ने वकालत छोड़ दी, अध्यापकों ने सरकारी विद्यालय छोड़ दिये, छात्रों ने भी इसी प्रकार सरकारी शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार कर दिया । विदेशी वस्तुओं का भी बहिष्कार किया जाने लगा । मगर इस शान्ति पूर्ण अहसयोग के आवेश में कुछ जगह जनता हिंसात्मक हो उठी । गोरखपुर जिले में चौरीचौरा के पास २२ पुलिस वालों को जिन्दा आग में जला दिया गया । गांधीजो हिंसा के विरुद्ध थे । फलतः दूसरे नेताओं के विरोध के बावजूद, गांधीजी को अपना आन्दोलन स्थगित कर दिया । सरकार ने कठोरता से पुनः दमन-चक्र चलाया । कुछ लोगों ने यहाँ तक कहा कि देश को गांधीजी ने धोखा दिया । परंतु गांधीजी सत्य पर दृढ़ रहे ।

गांधीजी पर भी सरकार ने मुकदमा चलाया । उन्हें छः वर्ष का कारावास का दंड दिया गया । जेल में १९२४ ई० में गांधीजी के पेट में फोड़ा निकला । उन्हें सरकार ने छोड़ दिया । बाहर आने पर गाँधीजी ने देखा कि भाई-भाई का गला

काट रहा है। हिन्दू-मुसलमान आपस में खून की होली खेल रहे हैं। गांधीजी ने लोगों को शान्त करने के लिये ८ अक्तूबर से २६ अक्तूबर १६२४ ई० तक (२१ दिनों) का उपवास किया। जनता की आँख खुली। गांधीजी के त्याग से प्रभावित होकर, एक-बार फिर हिन्दू-मुसलमान आपस में गले मिले।

१६२४ ई० में बेलगांव में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। गांधीजी कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। इससे गांधीजी पर एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ गई। गांधीजी ने देश में अनेक रचनात्मक कार्यक्रम शुरू किये।

१६३० में एक बार पुनः गांधीजी को 'असहयोग-आंदोलन' प्रारम्भ करना पड़ा। कांग्रेस ने १६२९ में पूर्ण स्वतत्रंता का प्रस्ताव पास किया। गांधीजी ने वाइसराय को पत्र लिखकर ११ शर्तें मानने को कहा। सरकार ने उन शर्तों को नहीं माना। गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने के लिये लोगों को नमक कानून तोड़ने की सलाह दी। अपने चुने हुए ७६ आदमियों के साथ १२ मार्च को गांधीजी ने डांडी की यात्रा शुरू की। उन्होंने घोषित किया कि नमक कानून तोड़ेंगे या मेरा शरीर समुद्र पर तैरता नजर आयेगा। देश में एक नयी हलचल शुरू हो गई। जगह-जगह पर लोगों ने नमक बनाना शुरू कर दिया।

सरकार ने बाध्य होकर गांधीजी को समझौते के लिये बुलाया। वाइसराय लार्ड इरविन से गांधीजी का एक समझौता

हुआ। गांधीजी इस समझौते के अनुसार 'गोलमेज सम्मेलन' में सम्मिलित होने विलायत गये। मगर वहाँ भी उन्हें विशेष सफलता न मिली। भारत पहुँचते ही वह गिरफ्तार कर लिये गये। सरकार ने लोगों को पकड़-पकड़कर जेलों में ठूँसना शुरू कर दिया।

हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालकर अंग्रेज यहाँ शासन करना चाहते थे। उन लोगों ने 'साम्प्रदायिक निर्वाचन' प्रणाली घोषित की। गांधीजी ने इसके विरोध में 'यरवदा-जेल' में ही आमरण अनशन २० सितम्बर १९३२ से प्रारम्भ कर दिया। अन्त में सरकार को झुकना ही पड़ा। इस प्रकार गांधीजी ने भारतवर्ष के समक्ष व्यक्तिगत-सत्याग्रह का भी एक उज्जवल आदर्श प्रस्तुत किया।

गांधीजी के 'असहयोग-आन्दोलन' का ऐतिहासिक महत्व है। इस आन्दोलन द्वारा सोये हुए राष्ट्र में नयी चेतना गांधीजी ने फूक दी। उन्होंने लोगों को बताया कि भारत को आजादी तभी प्राप्त हो सकती है जब छोटा-बड़ा हर व्यक्ति कुछ त्याग करने को प्रस्तुत हो। इस आन्दोलन की सफलता इस बात से आँकी जा सकती है कि इससे ब्रिटिश-शासन की मजबूत जड़ एकबार भारत में हिल उठी और हमारे शासक अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिये, कठोर दमन-चक्र चलाने को बाध्य हुए। डायर ने जलियाँवाले बाग में निर्दोष भारतियों को गोली से भुनकर, एक प्रकार से ब्रिटिश शासन की जड़ खुद ही खोद दी।

स्वदेशी और अछूतोद्धार

बापू स्वदेशी को स्वराज्य की पहली सीढ़ी मानते थे। उनका कहना था यदि भारत को स्वराज्य-प्राप्त करना है तो उसे स्वदेशी का व्रत पहले लेना होगा। असहयोग-आन्दोलन के समय गांधीजी की 'स्वदेशी' पर श्रद्धा और दृढ़ बनी।

१६०८ तक गांधीजी ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने चर्खा या करघा देखा भी न था। १६१४ में जब गांधीजी दक्षिण

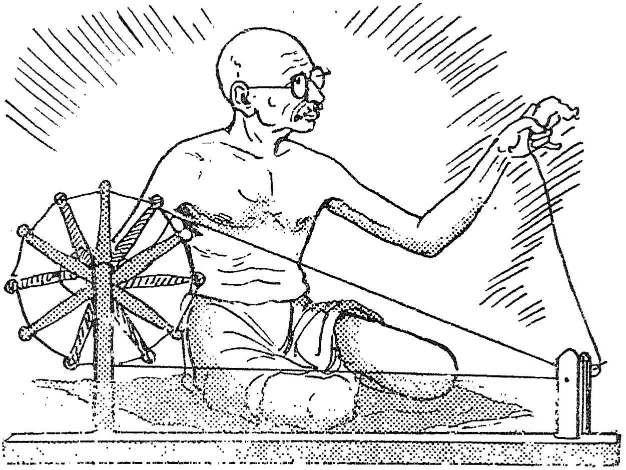

अफ्रिका से भारत आये, तब भी उन्होंने चरखा न देखा था। वे उस समय तक मिल के तैयार कपड़े पहनते थे। अहमदाबाद आश्रम

में पहली बार एक चर्खा लाकर रखा। उसका प्रयोग कोई नहीं जानता था। जब प्रयोग करना आ गया तो काते हुए सूत की बुनाई जाननी जरूरी हो गयी। इसके लिए जुलाहों से मदद ली गई। आश्रम में रहनेवाली बहुत सी देवियों ने सूत कातना तथा करघा चलाना सीखा।

एकबार गांधीजी बम्बई में बीमार पड़े। रोज नियमित रूप से उनके कमरे में आश्रम की देवियाँ चर्खा चलाती। उसकी ध्वनि से बापू को इतनी शान्ति मिली कि शीघ्र ही वे नीरोग हो गये। उन्होंने खादी की धोती पहनने का निश्चय किया।

बापू ने पूरे देश का भ्रमण किया और जनता में खादी का प्रचार किया। घर-घर सूत काता जाने लगा। उन्होंने 'अखिल भारतीय चर्खा-संघ' की स्थापना की। बापू ने चरखे में भगवान के दर्शन किये। वे स्वयं नियमित रूप से रोज थोड़ी देर सूत कातते। इस प्रकार देश की बहुसंख्यक बेकार एवं निराश्रित स्त्रियों को जीविका का एक सहारा प्राप्त हुआ। गरीब जुलाहों को भी रोटी-रोजी प्राप्त हुई।

बापू के अनुसार स्वदेशी का बहुत सीधा और सरल अर्थ है। हर गाँव को अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ स्वयं पैदा कर लेनी चाहिये। आत्म-निर्भरता स्वदेशी का पहला पाठ है। बिना आत्म-निर्भर बने हम पराधीनता की बेड़ियाँ नहीं काट सकते।

इसलिये बापू कहा करते गाँव-वालों की तरह शहरवासियों को भी अपनी आवश्यकता नगर में बनी चीजों से ही पूरी कर लेनी चाहिये। अधिक से अधिक देश में बनी चीजों का ही प्रयोग कर सन्तोष कर लेना चाहिये। विदेशी वस्तुओं का प्रयोग कर अपने देश का पैसा बाहर न भेजना चाहिये।

बापू का 'स्वदेशी' का यह मन्त्र 'असहयोग' की भाँति ही बहुत प्रभावकारी सिद्ध हुआ। जगह-जगह पर विदेशी-कपड़ों की होलियाँ जलायी जाने लगी। विदेशी वस्त्रों की दुकानों के समक्ष स्वयंसेवकों ने शान्तिपूर्वक धरना देकर, लोगों को वहाँ से कपड़े खरीदने से रोका। पुलिस के डंडे सहे, घोड़ों के पाँव के नीचे कुचले गये, फिर भी विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आंदोलन ठंडा न पड़ा।

गांधीजी एकबार उत्कल की यात्रा कर रहे थे। उन्होंने एक गरीब स्त्री को फटा मैला छोटा कपड़ा पहने देखा। उस गन्दे कपड़े से भी उसका शरीर पूरी तरह नहीं ढका हुआ था। गांधी जी ने उस कपड़े की गन्दगी देखकर उससे पूछा, तुम आलस्य छोड़ इस गन्दे कपड़े को क्यों नहीं धोती। उसने उत्तर दिया कि इस कपड़े के सिवाय और कोई दूसरा कपड़ा उसके पास नहीं है, जिसे पहनकर वह इस कपड़े को धो सके। गांधीजी के हृदय को चोट लगी और उनके नेत्र गीले हो उठे। उन्हे यह सोचकर दुःख हुआ कि बेड़ियों में जकड़ी भारत-माता के पास आज अपनी

लाज ढकने को भी यथेष्ट वस्त्र नहीं है। बस फिर क्या था ? बापू ने भी उस दिन से केवल एक लंगोटी पहनने का निश्चय किया। स्वराज्य मिल जाने के बाद भी बापू ने लंगोटी पहनना न छोड़ा। उनकी प्रतीज्ञा थी कि जब तक देश के गरीब से गरीब व्यक्ति को भी देह ढकने के लिए पर्याप्त कपड़ा न मिलने लगेगा, मैं पूरे कपड़े न पहनूँगा। एक लँगोटी ही लाज ढकने के लिए पर्याप्त है।

ऐसे थे दृढ़ प्रतिज्ञ बापू। विलायत भी लंगोटी पहनकर जाते उन्हें संकोच न हुआ। तभी न गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें 'महात्मा' कहकर सम्बोधित किया ? इस प्रकार 'खादी' और स्वदेशी व्रत ने बैरिस्टर मोहनदास कर्मचन्द गांधी को 'महात्मा गांधी' के रूप में करोड़ों भारतियों के मन-मन्दिर में प्रतिष्ठित किया।

बापू ने एक और बड़ा ऐतिहासिक काम किया। वह है अछूतोद्धार-आन्दोलन। बापू ने देखा कि जिस प्रकार दक्षिण-अफ्रिका में गोरे लोग, काले भारतियों को छोटी निगाह से देखते हैं और उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं, ठीक उसी प्रकार भारतवर्ष में सवर्ण हिन्दू 'अछूतों' के साथ भेद जनक व्यवहार करते हैं। बापू ने अनुभव किया कि इस असमानता के कारण हिन्दू-धर्म की जड़ दिन प्रतिदिन खोखली होती जा रही है।

उन्होंने 'अछूत' को हरिजन कहकर गले लगाया। उनके आश्रम का द्वार सबके लिये खुला था। गाँधीजी ने 'हरिजन-सेवक संघ', की स्थापना की। त-छात मिटाने के लिए बापू ने सारे देश

का ढोंग किया। गाँधीजी का ब्राह्मण, पंडे पुजारियों ने उग्र विरोध किया। लेकिन बापू सत्य-मार्ग से तनिक भी विचलित नहीं हुए। एक बार इसीलिये गाँधीजी ने २१ दिनों का उपवास भी किया।

गांधीजी का कोरे भाषणों पर विश्वास न था वे कर्मवीर गांधी थे। वे अपना कार्य स्वयं करते थे। अपने हाथ से कमरे में झाड़ू

लगाते। उन्हें अपना ही नहीं, दूसरों का मल-मूत्र भी उठाने में तनिक संकोच नहीं होता। वे किसी काम को छोटा नहीं समझते थे। उनके रचनात्मक कार्यक्रमों ने समस्त भारतवर्ष में एक नयी जागृति उत्पन्न कर दी। 'स्वदेशी' और 'अछूतोद्धार' गांधीजी के जीवन के दो महान सफल प्रयोग थे। गांधीवादी दर्शन का सार-तत्त्व भी इसी में निहित है।

'अंग्रेजों भारत-छोड़ो'

१९३९ की बात है । दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हो चुका था । अंग्रेज शासक प्रथम महायुद्ध की भाँति गांधीजी से सहयोग चाहते थे । लेकिन यथार्थ की आग ने गांधीजी की ब्रिटिश राज्य-भक्ति को तृण की भाँति जला दिया था। उनका पुराना विश्वाश बदल चुका था । उन्होंने कहा कि जो स्वयं पराधीन

हैं, वह दूसरे की मदद क्या कर सकता है ? उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि जब तक भारत को स्वतंत्रता का आश्वासन नहीं प्राप्त हो जाता, भारत इस युद्ध में कुछ भी मदद नहीं कर सकता ।

जर्मनी और जापान दोनों ओर से आगे बढ़ते आ रहे थे ।

जापान बर्मा तक आ पहुँचा था। गांधीजी ने अनुभव किया कि भारत की रक्षा अंग्रेज करने में असमर्थ हैं। अतएव ८ अगस्त १६४२ को उन्होंने घोषित किया—'अंग्रेजों भारत छोड़ो !'

बम्बई में यह प्रस्ताव पास हो गया। अंग्रेजों की प्रतिहिंसा जाग उठी। भारत के सभी महान नेता बन्दी बना लिये गये। सारे देश में एक तूफान उठ खड़ा हुआ। बच्चा-बच्चा पुकार उठा—'अंग्रेजों भारत छोड़ो।'

बिना किसी नेता के, भारतीय जनता शासन के विरुद्ध उठ-खड़ी हुई। सरकारी थाने, रेल, तार, कचहरी, दफ्तर, आदि फूंके जाने लगे। दमन-चक्र भी चला। निर्दोष व्यक्ति भी गोलियों के शिकार बने। कितने नौजवानों को फाँसी पर लटका दिया गया। लाखों आदमी पकड़कर जेलों में ठूंस दिये गये।

अंग्रेजों ने गांधीजी के विरुद्ध अनर्गल प्रचार प्रारम्भ किया। गांधीजी ने इसके विरोध में लम्बा उपवास किया। कारावास में ही गांधीजी की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबा का देहान्त हो गया तथा उनके प्रिय सहकर्मी श्री महादेव देसाई भी चल बसे।

१५ अगस्त १६४७ को आखिर अंग्रेजों को भारत छोड़ना ही पड़ा। घर-घर आजादी के दीप जल उठे। भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

—:०:—

बापू का बलिदान

अंग्रेजों ने विवश होकर भारत छोड़ा, लेकिन भाई-भाई में फूट उत्पन्न कर दी। हिन्दुस्तान को आजादी तो दी, लेकिन उसके दो टुकड़े कर दिये। एक ओर भारत में खुशी के दीप जल रहे थे, आजादी का मंगलगान हो रहा था, दूसरी ओर पाकिस्तान में खून से होली खेली जा रही थी। लाखों शरणार्थी बेघर-बार होकर भारत आये।

गांधीजी बहुत दुःखी हुए। वे नोआखाली गये। वहाँ लोगों को शान्ति का पाठ पढ़ाने लगे। सरकार ने गांधीजी की सहायता के लिये रक्षक-दल की व्यवस्था करनी चाही, मगर गांधीजी ने अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था मुझे अपने देश में भाई बहनों से क्या खतरा हो सकता है? गांधीजी को अनेक धमकियाँ प्राप्त होती। लेकिन निडर बापू कहते, इस शरीर पर सबका समान अधिकार है। वे पैदल घर-घर जाते और लोगों को शान्ति, सहिष्णुता एवं बंधुत्व का पाठ पढ़ाते।

गांधीजी नोआखाली से पटना गये। वहाँ लोगों को शान्त कर दिल्ली पहुंचे। वहाँ भी खून की होली खेली जा रही थी। गांधीजी ने लोगों को शान्त करने के लिये उपवास प्रारम्भ किया। देश के अनेक गणमान्य नेताओं के आग्रह एवं आश्वासन

पर उन्होंने अनशन भंग किया।

२० जनवरी १९४८ को गांधीजी पर प्रार्थना-सभा में एक देशी-बम फेंका गया। गांधीजी सौभाग्य से बच गये। उन्हें मृत्यु से कभी भय न लगता था। ३० जनवरी १९४८ को गांधीजी शाम को ५ बजे के बाद बिड़ला भवन में प्रार्थना-स्थल की ओर जा रहे थे। उसी समय नाथूराम विनायक गोडसे ने पिस्तौल से गांधीजी पर गोलियाँ चलाईं। अहिंसा के पुजारी की छाती पर हिंसा का वार हुआ। बापू गिर पड़े। उनकी उज्जवल आत्मा, उनके नश्वर शरीर का बन्धन तोड़ उड़ गई।

सारा देश बापू के बलिदान पर बिलख उठा। राष्ट्रपिता बापू को खोकर, देश अनाथ हो गया।

बापू का आदर्श-जीवन

राष्ट्रपिता बापू का जीवन, आदर्श का मूर्त-रूप था, सत्य और अहिंसा के पुजारी बापू, अपनी सादगी एवं सहृदयता के कारण ही महात्मा बने। उनकी दिनचर्या साधारण होते हुए भी अपूर्व थी। आलस्य उन्हें छू तक नहीं गया था। साठ-सत्तर वर्ष की उम्र में लोगों की कमर झुक जाती है, लेकिन ७८ वर्ष की आयु में भी बापू सीधे तनकर चलते। उनकी दैनिक दिनचर्या कभी भी अनियमित नहीं हुई।

वे हमेशा एक जेबघड़ी कमर पर लटकाये रखते थे। घड़ी की सुइयों की तरह उनका नियमित जीवन था। प्रातः ४ बजे उठ जाते थे। प्रातः क्रिया से निवृत्त होकर ५ से ५॥ बजे तक आश्रमवासियों के साथ ईश्वर की प्रार्थना, भजन तथा कीर्तन करते। सुबह के नाश्ते में थोड़ा-सा बकरी का दूध और चोकर की मोटी रोटी लेते। कभी गुड़ या नारङ्गी का रस भी ले लेते। नाश्ता करने के बाद घूमने निकल जाते। तीन-चार मील का चक्कर लगा लेना साधारण बात थी। रास्ते में मिलने-जुलनेवालों से भी बातें कर लेते। अगर कभी पानी बरसता तो आश्रम के बरामदे में ही टहल लेते। बापू भोजन से भी अधिक जरूरी घूमना मानते थे। घूमकर लौटने के बाद कुछ देर विश्राम कर फिर आश्रम का काम करते। उनसे गरीब

से गरीब आदमी भी मिल सकता था। साढ़े नौ बजे सरसो के तेल से मालिश करते। फिर आधा घण्टा गरम पानी से भरे टब में लेटे रहते। शरीर को खूब मल-मलकर साफ करते। उसमें लेटे-लेटे ही दाढ़ी भी बना लेते। वह साबुन का कभी प्रयोग न करते।

ग्यारह बजे आश्रमवासियों के साथ भोजन करते। भोजन के बाद कुछ देर आराम करते और सो जाते। एक बजे उठकर फिर काम में लग जाते। सभी पत्रों का उत्तर अवश्य देते। प्रायः हिन्दी या गुजराती में ही पत्र लिखते। कभी-कभी अँग्रेजी में भी पत्र लिखना पड़ जाता। साढ़े चार बजे तक मिलने-जुलने वालों का ताँता लगा रहता। सबको उचित सलाह आदि देते। फिर ५ बजे तक आधा घण्टा चर्खा कातते। सूर्यास्त से पूर्व ही हल्का सादा भोजन कर सायंकालीन प्रार्थना-सभा में सम्मिलित होते, प्रार्थना-सभा से खाली होकर टहलने निकल जाते। रात में ९ बजे तक जरूर सो जाते, वे हमेश खुली हवा में सोते। लकड़ी के तख्त पर एक मामूली गद्दी बिछाकर सो जाते। बापू की यही साधारण दिनचर्या थी।

बापू ऊपर से जितने गंभीर प्रतीत होते, भीतर से उतने ही विनोदी भी थे। एक बार रात में जवाहरलालजी उनसे मिलने आए। अँधेरे में बापू की छड़ी से उन्हें ठोकर लगी। उन्होंने बापू से पूछा, 'अहिंसा के पुजारी होकर छड़ी क्यों रखते हैं?' तुरन्त हँसते हुए बापू ने कहा—'तुम जैसे शरारती लड़कों के लिये।'

बापू जहाज से लन्दन जा रहे थे। रास्ते में एक बदमिजाज गोरे से उनका परिचय हो गया। वह बात-बात में गांधीजी को गालियाँ बकता। गांधीजी चुपचाप सहन कर लेते। उसने गांधीजी पर एक व्यङ्गपूर्ण अश्लील कविता लिखी और उन्हें पढ़ने को दे गया। गांधीजी ने कागजों में लगी 'पिन' को निकालकर डिबिया में रख लिया और उन कागजों को फाड़ कर फेंक दिया। गोरा बोला—'गांधी, मेरी कविता को पढ़ो तो, उसमें कुछ सार भी है।' गांधीजी ने फौरन उत्तर दिया—'जो सार था वह मैंने पहले ही निकाल कर डिबिया में रख लिया।' गोरा एकदम पानी-पानी हो गया और गांधीजी मुस्कराते रहे।

बापू को बच्चों से बहुत प्यार था। उनके साथ खेलने में

उन्हें आनंद आता था। जब वह टहलने जाते तो प्रायः बच्चे

भी उनके साथ चल पड़ते। एकबार बच्चों के साथ बापू ने दौड़ लगाई। शर्त थी कि पहले कौन दीवार छूता है। बापू पिछड़ गये, फुर्तीले बच्चे आगे निकल गये। बच्चे अपनी जीत पर खूब खुश होने लगे और बापू भी उनके साथ दिल खोलकर हँसने लगे अपनी हार पर। ऐसे थे सरल हृदय बापू!

बापू को एक चीनी यात्री ने ३ बन्दरों का एक खिलौना भेंट किया। वे उसे सदा अपने पास रखते। वे उन्हें अपना गुरु मानते। तीन बंदरों में से एक बंदर ने अपना मुँह बन्द कर रखा था। गाँधीजी के अनुार वह बंदरस कहता है—'झूठ न बोलो, न किसी की निन्दा करो!' दूसरे बंदर ने अपनी आँखें

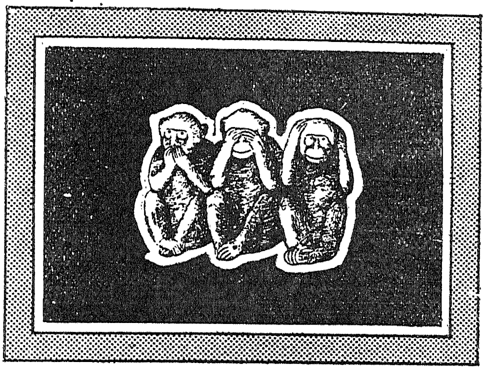

बंद कर रखी थी। गाँधीजी के अनुसार वह कहता है–'कोई बुरी चीज न देखो।' तीसरे बंन्दर ने कान बन्द कर रखे थे। गाँधीजी के अनुसार वह कहता है–'किसी की बुरी बात मत सुनो!'

गाँधीजी ने आजीवन इन तीन प्रतिज्ञाओं का पालन किया। बापू जो कहते थे उसका पालन करते थे। कथनी और करनी में उनके तनिक भी अन्तर न था। सत्य के पुजारी बाप

का ईश्वर में अटूट विश्वास था। वह कहा करते थे–'मेरे प्रभु के हजारों रूप हैं। कभी मैं उसका दर्शन चर्खे में करता हूँ, तो कभी साम्प्रदायिक एकता में, कभी अस्पृश्यता निवारण में तो कभी रोगियों और दुखियों की सेवा में। मैं गरीब से गरीब हिन्दुस्तानी के जीवन के साथ अपने जीवन को मिला देना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि दूसरे तरीकों से मुझे ईश्वर के दर्शन हो ही नहीं सकते।'

बापू के भगवान किसी पत्थर की निर्जीव पिण्ड में नहीं स्थित थे, वरन् वह लोक व्यापक थे। दीन-दुखियों की सेवा को ही वे ईश्वर की सबसे बड़ी पूजा मानते थे। उन्होंने 'नर' में ही 'नारायण' के दर्शन किये।

आज बापू का अस्थि-चर्ममय शरीर तो हमारे बीच नहीं है, लेकिन उनके आदर्श आज भी जीवित हैं। वह रास्ता जिस पर चलकर बापू ने भारत को आजादी दिलाई, और वह रास्ता जिसपर चलकर बापू के सपनों का भारत, साकार हो सकता है, आज भी हमारे सामने वर्तमान है। बापू उस ओर चलने को कह रहे हैं। चलेंगे, तो उनकी स्वर्गीय आत्मा को शांति प्राप्त होगी।

उनके जीवन का सबसे बड़ा संदेश है, स्वावलम्बी बनो, अपना काम खुद करो। त्याग, तपस्या एवं सत्य से ओत-प्रोत राष्ट्रपिता बापू का जीवन, शताब्दियों तक भविष्य में भी हमारे राष्ट्र को चिर-नूतन प्रेरणा देता रहेगा।

—:०:—